नव-दम्पती को उपदेश

"प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा,
सर्वे कामाः शेवधि र्जीवितञ्च ।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसाम्,
इत्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ।।"

—"मालती०"

विषय - सूची

दो शब्द

वाचकवृन्द !

डी० ए०-वी० कालेज कानपुर अपनी स्थापना के समय से ही पाश्चात्य शिक्षा के साथ-साथ वैदिक धर्म के प्रचार के लिये अपनी शक्ति के अनुकूल कुछ न कुछ कार्य करता ही रहा है। कालेज के प्रबन्ध समिति के सदस्य तथा कालेज के सभी विभागों के कार्यकर्त्ता जहाँ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की महत्ता स्वीकार करते हैं वहाँ उन्हें यह भी दृढ़ विश्वास है कि यह ज्ञान-विज्ञान जो विशुद्ध रूप से वाह्य जगत् के विविव रूपों से सम्बद्ध हैं जब तक आन्तरिक आध्यात्मिक सम्पदा से संयुक्त नहीं होगा तब तक मानव का सर्वांगीण कल्याण नहीं कर सकेगा।

आर्य समाज के कार्य क्षेत्र में अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों क्षेत्रों की उन्नति मानी गई है। आधुनिक शिक्षा मानब जीवन को आगे तो बढ़ाती है परन्तु उसे ऊँचा नहीं उठाती। भारतीय संस्कृति जिसे विशुद्ध रूप में वैदिक संस्कृति कहा जा सकता है हमें आगे भी बढ़ाती है और ऊँचा भी उठाती है। यह ऊँचा उठना जीवन का "उक्थ" है। जीवन का निर्माण सरल कार्य नहीं है उसके लिये उत्कट प्रयत्न की आवश्यकता है। निरन्तर कार्य में जुटे रहना, जीवन उत्थान की कुंजी है।

यह महाविद्यालय (कालेज) अपने प्राध्यापक एवं विद्यार्थी वृन्द दोनों से ही यह आशा करता है कि वे जहाँ अभ्युदय के क्षेत्र में आगे बढ़े वहाँ निःश्रेयस के क्षेत्र में ऊँचे भी उठे। इस दिशा में साधारण शिक्षा प्रसार कार्य के अतिरिक्त कुछ ऐसे ग्रन्थ भी डी० ए०-वी० कालेज की ओर से प्रकाशित हुए हैं जिनका एकमात्र लक्ष्य जीवन का उत्थान है।

डी० ए० वी० कालेज, कानपुर में अनुसन्धान का कार्य गत द्विदशाब्दी से हो रहा है, किन्तु उसका नियमित स्वरूप सन् १९६३ ई० में हुआ तथा अनुसन्धान विभाग (वैदिक शोध संस्थान) की यथाविधि

स्थापना की गई। जिसकी कार्यकारिणी में—

१—श्री वीरेन्द्रस्वरूप जी, एम. एल. सी., अध्यक्ष, डी० ए० वी० कालेज मैनेजमेन्ट एण्ड सोसाइटी,

२—डा० कालकाप्रसाद जी भटनागर, एम. ए. एल-एल. बी.,

३—प्रिन्सिपल श्री शारदाप्रसाद जी मंत्री, आर्य समाज, मैस्टन रोड,

४—श्री डा० मुन्शीराम जी एम. ए. डी. लिट्.,

५—श्री पं० विद्याधर जी कार्यवाह मन्त्री हैं

इस समिति ने श्री डा० मुन्शीराम शर्मा एम. ए. डी. लिट्. को अनुसन्धानकर्त्ता के रूप में नियुक्त किया है तथा आजकल वे ऋग्वेद का मनन व पुरुषसूक्त पर एक भाष्य लिख रहे हैं जो कि शीघ्र ही प्रकाशित होगा। श्री डा० हरिदत्त शास्त्री भी इस विभाग में यथासमय कार्य करते हैं। इस अनुसन्धान माला में जो पुस्तकें पुष्प के रूप में विकसित हुई हैं उनकी संख्या १० (दस) है जिनका विवरण पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर दिया हुआ है जिससे अनुसन्धान विभाग की प्रगति का संक्षिप्त परिचय मिलता है। अनुसन्धान ग्रन्थमाला का यह अष्टम पुष्प है। इसमें अन्य विधियों की तुलना के साथ-साथ वैदिक विधि की महत्ता प्रदर्शित की गई है। अभी तक ऐसी कोई भी विवाह पद्धति नहीं थी जिसके द्वारा कर्मकाण्ड में अपरिनिष्ठित व्यक्ति भी विवाह संस्कार को सरलता से करा सकने, इस कमी को दूर करने के लिए ही इस पद्धति का प्रकाशन किया जा रहा है। अनेक आर्य विद्वान् विधि के पौर्वापर्य को महत्व नहीं देते। सच पूछो तो विधि ही कर्मकाण्ड की आत्मा है। उसमें थोड़ा सा भी विपर्यास पुण्य के स्थान पर अधर्म का हेतु बन जाता है। इस पुस्तक को पढ़ने से ये सब कठिनाइयाँ दूर होंगी तथा पन्ने पलटने का कष्ट भी न करना पड़ेगा क्योंकि जो मंत्र जितनी बार जहाँ देना चाहिए वहाँ प्रायः दे दिया गया है।

इस पुस्तक के लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली है:—(१) आश्वलायन गृह्यसूत्र, (२) गोभलीय गृह्यसूत्र (३)

इनके भाष्य (४) आह्निक सूत्रावलि: (५) उद्वाह समय मीमांसा (रामामिश्र शास्त्रीकृत) कर्मकलाप, (६) नारायणदत्त कृत—प्रयोग रत्न (७) आह्निक चन्द्रिका इत्यादि। इसके अतिरिक्त अनेक विवाह पद्धतियों से भी यथास्थान सहायता ली गई। श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी की पद्धति किसी एक सूत्र या भाष्य के आधार पर नहीं चली हैं कहीं-कहीं तो सूत्रकार और स्वामी जी का परस्पर मतभेद भी है। जैसे :—ॐ सरस्वती प्रेदमव सुभगे वाजिनी वति" इत्यादि मंत्रों से स्वामी जी हस्ताञ्जलिग्रहण मानते हैं, पर सूत्रकार ऐसा नहीं मानते। इसी प्रकार "भगाय स्वाहा" इत्यादि स्थलों में भी विधि में भेद है। हमें यह निश्चय है कि यदि संस्कार कर्ताओं के पास केवल हमारी यही पद्धति हो तो उन्हें अन्य किसी पुस्तक की सहायता नहीं लेनी पड़ेगी। यदि पाठक महानुभावों और धर्मपरायण आर्य जनता ने इस पद्धति को अपनाया तो हम 'वेदारम्भ संस्कार पद्धति' आदि तत्तत्संस्कारों की पद्धतियाँ भी लिखकर "आर्य जगत्" को भेंट करने का प्रयत्न करेंगे।

ग्रन्थान्कोऽपि लघुः प्रकाशयति चेद् यत्नेन तेषां प्रथाम्,
आतन्वन्ति कृपा कटाक्ष लहरी लावण्यतः सज्जनाः।
माकन्द द्रुम मञ्जरीं वितनुते चित्रा मधुश्री स्ततः,
सौभाग्यं प्रथयन्ति पञ्चम चमत्कारेण पुंस्कोकिलाः॥

"शान्ति प्रकरण नहीं शान्तिकरण"

प्रायः संस्कार विधियों में "स्वस्ति वाचन" और "शान्ति प्रकरण" छपा मिलता है, पर ऋषि दयानन्द के संस्कार विधि के हस्तलेख के अनुसार "शान्ति प्रकरण" की जगह "शान्ति करण" पाठ ही ठीक व उचित है क्योंकि शान्तिकरण का अर्थ 'शान्ति का करना' है। यही अर्थ 'स्वस्ति वाचन' के समान जँचता है—'प्रकरण' शब्द किसी नये पाठ के आरम्भ का सूचक है जो सन्दर्भ में सङ्गत नहीं होता। विवाह संस्कार में 'शान्ति करण' के मन्त्रों का पाठ आवश्यक नहीं।

कतिपय आर्य सामाजिकों की यह भी आग्रह ग्रहिलता रही है कि वे प्रत्येक विधान या रीति, रिवाज को वेद के मंत्रों में ही देखना चाहते। वे यह नहीं विचारते की श्रुति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ का प्रतिपादन करती है। यदि सब कर्मों को श्रुति स्वयं शब्दों से ही प्रतिपादित कर दे तो विधि भाग, ब्राह्मण, स्मृतियाँ एवं कल्पसूत्र व्यर्थ ही हो जायँ। अतः जब तक श्रुति का विरोध न मिले तब तक सदाचार भी निरंकुश प्रमाण माना जाता है। इसी कारण हमने शिष्टाचार को महत्व दिया है। भगवान् मनु भी कहते हैं कि—

"श्रुति स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रिय मात्मनः।
एतत् चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्॥"

प्रत्येक संस्कार में वेद मंत्रों के शुद्ध उच्चारण का बड़ा महत्व रहता है। यही हाल ऋषि, देवता, छन्द और स्वर के ज्ञान का भी है। यदि अन्य कुछ न भी करे तो भी शब्द का शुद्ध उच्चारण तो अवश्य होना चाहिए। यदि स्वर का भी प्रयोग करले तो सोने में सुगन्धि है। अस्तु!

क्षमा याचना

हम उन वेद के प्रेमी बन्धुओं से क्षमा चाहते हैं जो मन्त्रों को बिना स्वर के बोलना पसन्द ही नहीं करते लिखना तो दूर रहा, क्योंकि स्वर रहित मन्त्रों के मुद्रण में टाइप का अभाव ही कारण रहा है, हमारी रुचि नहीं। मन्त्रों को अनेक बार शुद्ध करने पर भी अशुद्धियाँ रह ही गईं हैं और ये इस प्रकार दिखाई पड़ती हैं जैसे सफेद चादर पर खटमल। एवं कहीं-कहीं मात्राएँ अक्षरों से ऐसे झड़ पड़ी हैं जैसे लू के झोंके से शहतूत तथा वे अक्षर ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे किसी ने कान व दुम काटकर एक जगह पिल्ले इकट्ठे कर दिये हों। अतः इन दोनों विवशताओं के लिए उदारशील पाठक क्षमा करें। क्योंकि सज्जनों का यह स्वभाव है कि :—

अत्रानुक्तं दुरुक्तं किमपि यदि भवेत्तद्धि सूक्तं कृषीरन्,
संख्यावन्तो महान्तो यदुप कृति विधौ शील मेषामतन्त्रम्।

आलोकं लोकहेतो विदधति निबिडध्वान्त मुद्वासयन्तः,
प्रालेयांशु प्रदीपद्युमणि मणि गणास्तत्र को हेतुरास्ते ।।

इस विवाह विधि के निर्माण में डा० हरिदत्त शास्त्री का परिश्रम स्तुत्य हैं एवं इस विवाह विधि के अनेक पहलू हैं जो विस्तृत हैं तथापि संक्षेप में उनकी गणना इस प्रकार की जा सकती है :—

"दद्याद् विष्टर-पाद्य-मर्घ-चमनं माध्वीक-धेन्वर्पणम्,
कन्यादान-कर ग्रहौ परिगमः, पाषाण लाज क्रमः ।
केश-स्पर्शन-ग्रन्थि बन्धन कृतिः पद्भ्यां गतिः सप्तधा,
मूर्धा सेकमथो विधेहि हृदयस्पर्शं समाङ्गल्यकम् ।।"

पर्याप्त ध्यान रखने पर भी जो रचना सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गई हैं उसके लिए सहृदय पाठक क्षमा करेंगे ।

विनीत प्रार्थी
विद्याधर
मन्त्री
अनुसन्धान विभाग
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

कानपुर
गुरुपूर्णिमा
२४–७–१९६४

भूमिका

विवाह-पद्धति पर विहङ्गम दृष्टि

विवाह संस्कार का समय व विधि

आजकल विवाह संस्कार के समय के विषय में बड़ी धाँधली है, जिसके जब मन में आता है उसी समय संस्कार करा लेता है, कुछ महानुभाव लग्न शुद्धि का भी विचार करते हैं और लग्न के अनुसार ही विवाह का समय रखते हैं। पौराणिक प्रथा प्रायः अर्ध रात्रि के समय या उससे कुछ आगे पीछे विवाह संस्कार कराने की है। उनकी लग्न तब ही आती है औरउसको वे कुछ २ पालते भी हैं। परन्तु हमारी समझ में विवाह का समय केवल अपरान्ह के (अर्थात् सायंकाल से कुछ पूर्व) ४ बजे से रात्रि के ८ बजे तक होना चाहिये इसी को "गोचर-मुहूर्त्त" या गोधूलि लग्न भी कहते हैं। इसमें ही पूर्वविधि समाप्त कर देनी चाहिये।

पूर्वविधि समाप्त होने पर कुछ देर विश्राम के वाद ऋत्विग् गणों को अपना नैत्यिक कृत्य (सन्ध्योपासनादि) कर उत्तर विधि का आरम्भ करना चाहिए। यद्यपि प्रातः काल ४ बजे से भी विवाह विधि आरम्भ की जा सकती है परन्तु ऐसा करने से ध्रुवादि दर्शन—जो कि उत्तर विधि का कर्त्तव्य है—नहीं हो सकता, अतः वह काल अग्राह्य है। संस्कार विधि में 'एक घन्टा मात्र रात्रि जाने पर विवाह विधि का आरम्भ करें', ऐसा लिखा है पर इस विषय में गृह्य सूत्रों में कोई दृढ़ प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।

"संस्कार विधि" में यह भी लिखा है कि दो प्रहर से आरम्भ कर देवें कि जिससे मध्य रात्रि तक विवाह विधि पूरी हो जावे।

आज कल कहीं-कहीं ऐसी प्रथा है कि तीन बजे से आरम्भ कर ९ बजे समाप्त कर देते हैं और फिर रात्रि के नौ बजे से आरम्भ कर उत्तर विधि बारह बजे तक समाप्त करते हैं।

१६ संस्कार कौन-कौन से हैं

सनातन धर्म पद्धति के अनुसार १. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जात कर्म, ५. नाम कर्म, ६. निष्क्रमण, ७. अन्न प्राशन, ८. चूड़ा करण, ९. कर्ण वेध, १०. उपनयन, ११. वेदारम्भ, १२. केशांत संस्कार १३. समावर्तन १४. विवाह १५. आवसथ्याधान संस्कार १६. श्रौताधान संस्कार।

किन्तु ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त के अनुसार केशान्त, आवसथ्याधान व श्रौताधान संस्कार नहीं हैं। किन्तु इनकी जगह गृहाश्रम, वानप्रस्थ, संन्यास, यह संस्कार माने गये हैं।

केशान्त संस्कार करने के बाद डाढ़ी का मुण्डन आरम्भ होता है। क्योंकि "जटिल ब्रह्मचारिणां तु सर्वकेश वपनम्" अर्थात् जटाधारियों के लिए सारे केशों का ही मुण्डन किया जाता है।

विवाह से प्रथम हवन

विवाह मण्डप में आने से पूर्व यदि वर वधू ने अपने अपने घर हवन न किया हो तो विवाह का कार्य आरम्भ होने से प्रथम हवन कर लें। इसके पश्चात् विवाह विधि का प्रारम्भ करें; यदि हवन कर चुके हों तो यज्ञ मण्डप में आते ही विवाह कृत्य आरम्भ कर दें।

विवाह के लिये उपयुक्त-संक्षिप्त सामग्री

१. दो पुष्प मालायें
२. आसन कुशा का हो या ऊनका
३. एक छोटी परात या बड़ी थाली
४. १५ सकोरे
५. एक लोटा
६. ४ गिलास

७. ४ चमची (जो गिलासों में पड़ी रहें)
८. एक कलश (घड़ा)
९. १ घृत दीपक
१०. सिन्दूर
११. पका हुआ भात (या अन्य शाकल्य जो विवाह में बना हो) या मोहन भोग लड्डू
१२. एक सपाट शिला (पत्थर)
१३. ऽ। लाजा (खील) या धान
१४. ऽ। दधि
१५. ऽ= मधु
१६. सामग्री १ एक सेर या ऽ२॥ यथाशक्ति
१७. एक बड़ा चम्मच
१८. एक घृत के लिए बड़ा पात्र
१९. कांस्य पात्री (सामग्री के लिए)
२०. २ अँगौछे
२१. १ धोती
२२. (क) रोली (ख) हल्दी आदि (हवन कुण्ड सजाने के लिये)
२३. समिधा
२४. कपूर
२५. वरपक्ष के दो व्यक्तियों के लिए (क) १ लोटा (ख) १ घड़ा व एक दण्ड
२६. १ कढ़ाई या पात्र सुन्दर बड़ा
२७. नारियल १
२८. आचमन पात्र ४
२९. छोड़ा घड़ा १
३०. बड़ा चम्मच १
३१. हल्दी की गांठ ४
३२. पैसे ४
३३. कौड़ी ४
३४. लाल कपड़ा ८ गज (अर्ज १२ गिरह का)
३५. आधा सेर मेवा
३६. आसन बढ़िया दो
३७. यज्ञोपवीत के दो जोड़े
३८. शमी के पत्ते ऽ-
३९. केशर (चार आने भर)
४०. कुल्हड़ १५
४१. महावर
४२. नई रुई)॥ दो पैसे की
४३. धनदीप
४४. बांस १२ (यज्ञशालार्थ)
४५. केले के पेड़ ४
४६. चावल १ छंटाक
४७. जौ आधा सेर
४८. सुपाड़ी ८
४९. कलावा या मौलि इत्यादि।

विस्तृत-विवाह-सामग्री सपरिमाण

कुंकुम (केशर)	१ तोला या ½ तोला
धूप बत्ती	१ डिब्बा
रुई	दो पैसे की
नैवेद्य (बताशे)	
ताम्बूल (पान)	५ (अभिषेक के लिये
सुपारी	५
अक्षत	चार पैसे के
यज्ञोपवीत	४ प्रति
पुष्पमाला	१०
पिसी हल्दी	ऽ=
छोटी इलायची	१० प्रति

पंच गव्य, गो दुग्ध, गो दधि, गो घृत, गोमूत्र, गोमय (व्रात्यत्व हटाने के लिए)

पंचामृत (दूध-दही-घी, शहद, चीनी)

सकोरे	१५
कुल्हड़	१५
नारियल	२
गोला (गिरी) १	यज्ञार्थ
कपूर	½ तो० या १ तोला
कुश	यज्ञकुण्ड सम्मार्जन के लिये

समिधा (ढाक, गूलर, आम, पीपल की) ८ सेर

सप्तधान्य (यव, गेहूँ, धान्य, तिल, चना, साभा, ककुनी (केड़ों)

कलश स्थापनार्थ

कांसे की कटोरियाँ	३ प्रति मधुपर्क के लिये
एक धोती	आचार्य के लिये
२ अंगोछे	यज्ञ के लिये

लाल कपड़ा ८ गज	मण्डप के लिये
आटा ऽ।	वेदी के लिए व लोई बनाने के लिए
रोली ऽ≈	वेदी के लिए
हल्दी ऽ–	हाथ पीले करने के लिए

पंचपल्लव (बड़, पीपल आदि) वल्मीक, संगम, तालाब, रोज द्वार गोष्ठ स्थानों की मिट्टी (यज्ञशाला के लीपने के लिए)

अरणि	अग्नि मंथन के लिए
रज्जु	"
मृगचर्म	"
कम्बल	"
आज्य स्थाली	घी के लिए
चरुस्थाली	स्थाली पाक या चतुर्थी कर्मांग भूत सह भोजन के लिए।
पूर्ण पात्र (२५६ मुट्ठी चावल सहित)	ब्रह्मा की दक्षिणा के लिए
प्रणीता पात्र	जल के लिये
प्रोक्षणी पात्र	(इदन्नमम) के तथा जल सेचन के लिए।
स्फ्य (खड्गाकृति)	यज्ञवेदी में रेखा के लिए
धूप पात्र	धूप के लिये
आरार्तिक पात्र	आरती के लिए
अर्घ्य पात्र	अर्घ के लिए
आचमनी	आचमन के लिए
मधुपर्क पात्र	मधुपर्क के लिए
विष्टर (आसन)	कन्या द्वारा वर को दिलाने के लिए
धमनी	अग्नि प्रज्वालन के लिए
व्यजन	" " "
शमी पत्र	ऽ–

खील (लावा)	लाजा होम के लिए
सूप (बिना तात का)	लाजा रखने के लिए
सिन्दूर	सौभाग्य तिलक के लिए
शहद	मधुपर्कार्थ ऽ-
मिठाई	आधा सेर सहभोजनार्थ व बलि वैश्व देव के लिए।
दक्षिणा	संस्थाओं तथा कार्यकर्त्ताओं के लिए

विशेष निर्देश

१—वधू की माता यदि विवाह के समय किसी बच्चे को जन्म दे तो वर पुरुष सूक्त प्रथम से होम करे।

२—यदि विवाह विधि के बाद मरणा शौच हो तो ७ दिन तक विशेष होम करे।

३—विवाह के बाद ६ मास तक मुण्डन या उपनयन संस्कार न करे।

४—एक ही वर्ष में सहोदर भाई अथवा बहिन का विवाह शुभावह नहीं पर संकट काल में ऐसा हो सकता है।

५—एक समय में दो शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। पुत्र विवाह के बाद पुत्री का विवाह छः मास तक नहीं करना चाहिये, यह प्रथा है।

६—दो कन्याओं का एक समय में आचार्य भेद और मण्डप भेद से ही विवाह हो सकता है, अन्यथा नहीं।

७—गरीब कन्या की शादी कराना पुण्य जनक है।

८—कन्या के वैधव्य योगों में कुम्भ विवाह विफल विवाह या सुवर्ण दान कराने की प्रथा है। जो केवल मन को समझाना है।

९—तीसरी बार विवाह अर्क वृक्ष की सामग्री से करें। यह लोकाचार है।

१०—गान्धीवादी, विवाहों में कन्यादान नहीं मानते, यह ठीक नहीं।

दान दक्षिणा कौन दे

प्राय: यह देखा गया है कि दान दक्षिणा देने के समय वर पक्ष वाले वधू पक्ष वालों की तथा वधू पक्ष वाले वर पक्ष वालों की तरफ देखा करते हैं, यह भी अनुचित है। यह यज्ञ दोनों का सम्मिलित यज्ञ होता है। अत: दोनों पक्षों से ही दान दक्षिणा दी जानी चाहिए, तब ही विधि साङ्ग होती है "हतोयज्ञस्त्वदक्षिण:" के अनुसार दान दक्षिणा देना भी यज्ञ का प्रधान अङ्ग समझना चाहिये। बहुत से महानुभाव दान तथा दक्षिणा में भेद ही नहीं समझते हैं। यह उनकी भारी भूल है। उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि दक्षिणा के योग्य आचार्य व ऋत्विग आदि हों एवं दान के अधिकारी, अनाथालय, विधवाश्रम, आर्य समाजें, पाठ-शाला या महाविद्यालय ज्वालापुर जैसी विविध संस्थायें हो सकती हैं जहाँ अध्ययनाध्यापन की नि:शुल्क व्यवस्था की गई है या अन्य कोई देशोपकारी अथवा सर्व हितकारी कार्य के लिए दान दिया जा सकता है यह दान, दक्षिणा, यथाशक्ति, श्रद्धानुसार ही होना चाहिए।

मधुपर्क विधि

किसी कांसी या मिट्टी के पात्र में ऽ। (पाव भर) निर्जल दही लेकर उसमें ऽ= (छटांक) मधु (शहद), ऽ- (१ छटांक) घृत मिलाकर दूसरे पात्र से ढक दे इसी को मधुपर्क कहते हैं। (गदाधर:)

दही न मिलने पर दूध अथवा जल भी उपयोग में आ सकता है। मधु न मिलने पर गुड़ काम में लाया जा सकता है।

(आश्वलायन गृह्य सूत्र)

मधुपर्क का दही यदि १ घण्टे पूर्व कपड़े में बांध खूटी टांग कर निर्जल कर लिया जाय तो बहुत अच्छा है।

दधिगुण—गर्म, अग्नि दीपक, स्निग्ध बल, और वीर्य को बढ़ाने वाला और कवोष्ण होने से वात नाशक है।

मधुगुण—शीतल, लघु स्वादु, अग्निवर्धक, व्रण नाशक और कफ को दूर करता है।

घृतगुणः—कान्ति, तेज, लावण्य, बुद्धिवर्धक विष और पित्तनाशक है। ओ३म् मधुपर्कः; इत्यादि मंत्र बोलने पर कन्या के हाथ से ढके हुए मधुपर्क को वर 'प्रतिगृह्णामि' यह वाक्य बोल कर दाहिने हाथ में ले और मित्रस्य त्वा० इससे मधुपर्क को उघाड़ कर देखे, पुनः 'देवस्य त्वा' इस मंत्र को बोल कर बाएँ हाथ में रक्खे। फिर बायें हाथ में रक्खे हुए मधुपर्क को "मधु वाता०" इत्यादि तीन मन्त्रों से देखता रहे। तदनन्तर दाहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ट से मधुपर्क का "नमः श्यावाम्याय०" इत्यादि तीन मंत्रों से देखना 'प्रयोगरत्न' के आधार पर लिखा है। यही आश्वलायन गृह्य सूत्रकार भी मानते हैं। परन्तु इन्ही मंत्रों से गृह्य सूत्र के टीकाकार हरिहर मिश्र व गदाधर भट्ट इन मंत्रों से मधुपर्क का खाना लिखते हैं।

मधुपर्क या खाने के प्रत्येक पदार्थ को जब तक हम पहले मित्रता, प्रेम अथवा रुचि की दृष्टि से न देखेंगे तब तक वह खाया हुआ पदार्थ पूर्ण लाभ नहीं देगा। यह बात प्रत्येक मनुष्य को अनुभव सिद्ध है कि खाने के जिस पदार्थ में उसकी रुचि होती है वह न केवल अधिक स्वादिष्ट प्रतीत होता है किन्तु वह अधिक लाभ भी देता है।

फिर 'ओ३म् देवस्य' इत्यादि वचन कहकर वाम हाथ में लेवें। वाम हाथ में लेने का प्रयोजन यह है कि अब उसे दायें हाथ से विलोना होगा और 'ओ३म् भूर्भुवः स्वः मधुवाता' इत्यादि तीन मन्त्र बोल कर उसकी ओर देखे। इन तीन मन्त्रों में प्रार्थना की है कि (जिस प्रकार "मिष्ट पदार्थ" प्रत्येक मनुष्य को अधिक प्रियता अनुकूल हैं उसी प्रकार 'हे ईश्वर! वायु, नदी, औषधि हमारे लिए मधुगुणं वाली अर्थात् लाभकारक हों)। दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि रात, प्रभात, पार्थिव पदार्थ और अन्तरिक्ष सुखकारक हों। तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि वनस्पति और गौयें सर्वत्र अनुकूल हों।

इसके आगे पूर्व आदि चारों दिशाओं तथा ऊपर की पाँचवी दिशा में मधुपर्क के मन्त्र पढ़ पढ़ कर छींटे देने का विधान है। इसके दो अभिप्राय हैं (१) एक तो यह कि वर पाँचों दिशाओं में इसके छीटें देता है जिसका भाव यह है कि मधुपर्क जैसी अनुकूल वस्तुओं की ईश्वर-कृपा से सर्वत्र वृद्धि हो ताकि सब प्रजा आनन्द में रहे। १२ नवम्बर १९०५ को बम्बई में जब श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स का स्वागत बम्बई की सभ्य नारियों ने किया था तो उस समय कटोरे में पानी भर कर सात बार उसके शिर से फेर कर उसकें छींटे दिये गये थे।

इसका भाव क्या था, उसके विषय में समस्त अँगरेजी समाचार पत्रों ने यह लिखा था "कि इसका भाव यह है कि सर्वत्र वर्षा पड़े और दुर्भिक्ष न आवे जिससे सबको सुख मिले।'

दूसरी बात यह है कि वर वसु रुद्र आदि संज्ञक विद्वानों का नाम यह कहते हुए ले रहा है कि ये लोग भी इस मधुपर्क के खाने के अधिकारी हैं। यह कहना निःसंदेह उनको मान देना है (जिनका यह वर्णन कर रहा है)। हम नहीं देखते कि आजकल भी यदि कोई वक्ता किसी अन्य वक्ता का नाम अपने भाषण में लावे तो उसके नाम लेने का अर्थ मान करना ही सब समझते हैं। यदि किसी वक्ता को कोई पुष्पमाला पहिनावे और पहनते समय वह कहे कि अमुक भी इसके अधिकारी हैं या वे भी इसको पहिना करते हैं तो क्या उनके नाम का यह कथनमात्र मान सूचक नहीं ?

सब दिशाओं में श्रेष्ठ व प्रथम दिशा पूर्व है जिसके ज्ञान होने से अन्य दिशाओं का ज्ञान होता है। सब प्रकार के विद्वानों में प्रथम कक्षा के विद्वान् वसु हैं। पूर्व से निकल कर सूर्य वृद्धि को प्राप्त होकर दक्षिण दिशा और उससे वृद्धि पाकर पश्चिम दिशा को जाता है।

इसलिए दक्षिण दिशा में छीटें देते हुए वसु से बढ़िया दर्जे के रुद्र विद्वानों का नाम लिया गया, फिर आदित्य विद्वानों का नाम लिया गया यह आदित्य विद्वानों का नाम पश्चिम दिशा में छीटें देते हुए लिया गया जो कि अत्युचित है, एवं जिस प्रकार सूर्य की तीन अवस्थाएँ हैं उसी प्रकार विद्वानों के भी तीन ही प्रकार हैं।

'उच्छिष्ट मधुपर्कोत्थापन'

जो स्थाली उच्छिष्ट मधुपर्क की है। जिसमें अब तक उच्छिष्ट शकोरे पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय जल, मधुपर्क आदि के रक्खे गये हैं उसे वर पक्ष का नाई उठावे, उस थाली में ~) पैसे डाल देना चाहिए ऐसा लोकाचार है या यह उसका पारिश्रमिक (महनताना) समझना चाहिए।

गोदान

गोदान कन्या पक्ष से ही होना चाहिए। कन्या पक्ष गोदान करने में यदि समर्थ न हो तो जितने में गौ मोल आ सके उतना द्रव्य या जितनी शक्ति हो उसके अनुसार धन (गो प्रतिनिधि) देना चाहिए।

गौ महिमा

गावो मे चाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये व साम्यहम्॥
दुग्धेन दध्नाहविषा तोकै रस्तोक विक्रमैः।
त्वङ् मूत्र गो मयै र्धात्री सदाऽघ्न्या वर्ध्यतां जनैः।
गवां च वंश माहात्म्यं लोके वेदे च विश्रुतम्।
आयुष्य मायासहरं गोकुलं वर्ध्यतां जनैः॥

पञ्च गव्य का परिमाण—

गोमूत्र ८ मा०, गोमय १६ मा०, दूध १२ मा०, दधि १० मा०, घृत ८ मा०, कुशोदक ५ मा०,

(धर्म सिन्धु के अनुसार)

सुरभि-अभिनन्दन

(श्रद्धेय कविरत्न श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा डी. लिट् कृत)

सुरभि सदा अभिनन्दन तेरा।

जय जन-जननी जय जन जीवन।
जय गोकुल गरिमा जय गोधन।
जय सुखदा शुचिता शुभ दर्शन।

भक्ति सहित वर वन्दन मेरा।
सुरभि सदा अभिनन्दन तेरा।

तेरे वीर बली वृष बालक।
धौरी धनी धवल कृषि चालक।
वाहन वाहक पुर प्रति पालक।

मिटा रहे दुर्गत दुख डेरा।
सुरभि सदा अभिनन्दन तेरा॥

घृत नवनीत दूध दधि खाते,
सन तृण तेल अन्न पट पाते,
पूतों फलते दूधों न्हाते,

सुखमय तेरा वास बसेरा।
सुरभि सदा अभिनन्दन तेरा॥

घूम घूम तिनके चरती है,
दुख हरती पर हित करती है,
जीते जी वैभव भरती है,

मरकर भी उपकार घनेरा।
सुरभि सदा अभिनन्दन तेरा॥

गोमय मूत्र रोग संहारक,
विषमारक शुभ स्वास्थ्य प्रसारक,
उपले खाद आदि उपकारक,
गुन गौरव र्वणित बहु तेरा ।
सुरभि सदा अभिनन्दन तेरा ॥

जन जन की रक्षक गोमाता,
भक्षक तोड़ नेह नय नाता,
वध करते क्यों हाय विधाता,
तुमको पुनि पुनि हेरा टेरा ।
सुरभि सदा अभिनन्दन तेरा ॥

गाय का उपकार

भेद भाव भूलकर सबकी समानता से
दूध दही घृत मावा माखन खिलाती है ।
बोते जोतते हैं बैल सींचते हैं खेतियों को
खीचते हैं गाड़ी अन्न यह भी दिलाती है ।
हाड़ मल मूत चाम चरबी चलाते काम
व्यय को बचाती तुच्छ तिनके चबाती है ।
जीवन में जग की भलाई करती है गाय
मरने पर जनता की जूती बन जाती है ।

कन्यादान-संकल्प या शाखोच्चार

ओ३म् तत् सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे द्वितीय यामे तृतीय मुहूर्ते श्री श्वेत वाराह नाम्नि कल्पे स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम तामस, रैवत, चाक्षुष, नामकेषु, षट्सु मनुषु अतिक्रान्तेषु सम्प्रति सप्तमे वैवस्वते मन्वन्तरे अष्टा विंशतितमे कलि प्रथम चरणे अमुक तिथौ अमुक वासरे

अमुकस्थे सूर्य अमुकस्थे शुक्रे अमुकस्थे शनौ, अमुकस्थे राहौ, अमुकस्थे केतौ, अमुक गोत्रः अमुक प्रवरः, अमुक शर्मा (वर्मा गुप्तोवा) अमुक गोत्रस्य प्रपौत्राय अमुक गोत्रस्य पौत्राय, अमुक गोत्रस्य पुत्राय, अमुक गोत्रस्य प्रपौत्रीं, पौत्री, पुत्री च इमां आयुष्मतीं श्री रूपिणीं अमुक नाम्नीं यथाशक्त्यालङ्कृतां यथाशक्ति च कल्पितयौतकी युतां प्रजापति देवतां श्री भगवत् प्रीतये द्वादशा वरान् पुरुषान् आत्मानन्द पितृकान् देवाग्निगुरु ब्राह्मण सन्निधौ अग्न्यादि साक्षिकतया सहधर्म चरणाय तुभ्यमहं संप्रददे प्रति गृह्णातु भवान् । इति ॥

इसी को शाखोच्चार भी कहते हैं। इस प्रकार तीन वार गोत्रोच्चारण करने के पश्चात् कन्या के दक्षिण हस्त को वर के दक्षिण हस्त पर रख दे। यहाँ वर की हथेली पर कन्या की हथेली रखना चाहिये इसी कृत्य को कन्यादान कहते हैं । वास्तव में यह कन्या का स्वीकरण है दान नहीं। इस अवसर पर कुछ द्रव्य देने का भी आचार है। यहाँ पर घर के अन्य सम्बन्धी जो कन्यादान के लिये व्रत से हों, वे भी कन्यादान ले सकते हैं। उसी को "अन्तर पट" कृत्य भी कहते हैं। दहेज रूप में अन्य वस्तुऐं भी कन्या का पिता तथा अन्य बान्धवादि यथाशक्ति इस समय अथवा यज्ञ की समाप्ति पर देना चाहें तो दे सकते हैं। यह पारस्कर गृह्य सूत्र के टीकाकार हरहर मिश्र लिखते हैं। दहेज की प्रथा बहुत पुरानी है। परन्तु आजकल इस प्रथा का बहुत कुत्सित रूप हमारे सामने है जिसका संशोधन करना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए।

अनेक विद्वान यह शंका करते हैं कि कन्या का दान नहीं हो सकता इसका उत्तर हम कर्क भाष्य से देते हैं। (जो पारस्कर गृह्य सूत्रों पर है) भाष्यकार कहते हैं कि पारस्कर सूत्रकार ने जो 'आदाय' 'गृहीत्वा' यह दो पद दिये हैं सो ठीक नहीं क्योंकि अप्रति ग्रहणीय कन्या का प्रतिग्रह नहीं हो सकता।

उत्तर—असली दान स्वत्व त्यागपूर्वक परस्वत्वापादन कहाता है; परन्तु कन्या कभी भी परस्व नहीं हो सकती क्योंकि विवाह के बाद भी "ममेयं कन्या" यह व्यवहार होता है। इसी प्रकार जहाँ पर पुत्रदान कहा गया है वहाँ भी गौण दान समझना चाहिए। यह विचार "विचार तन्त्ररत्न" के षष्टाध्याय, सप्तम पाद, प्रथमाधिकरण में भी किया गया है।

अप्रतिग्रह योगस्य प्रतिग्रह विधानतः।
क्षत्रियादेर्यथा दानं स्यादा दायोति सूत्रितम्॥
(इति रेणुकाचार्यः)

वस्त्र तथा उपवस्त्र देना

विवाह विधि में वर वधू को उपवस्त्र देवें तथा स्वयं अधो वस्त्र और दुपट्टा पहने ऐसा विधान है परन्तु यह वस्त्र दान पहिले ही हो जाता है केवल मन्त्र पाठ ही यहाँ किया जाता है। उचित यह है कि वस्त्र दान विवाह संस्कार के समय पर ही हो, अथवा जब वस्त्र भेजे जावें, इसी समय इन मंत्रों को पढ़ दिया जाय।

पारस्कर गृह्य सूत्र के भाष्यकार 'हरिहर मिश्र' "ये वस्त्र कन्या के पिता की तरफ से वर वधू दोनों को दिये जाते हैं" ऐसा मानते हैं।

इन ४ मन्त्रों का भाव यह है :—

(१) जरावस्था को मेरे साथ प्राप्त हो।

(२) मेरे दिये हुए वस्त्र को धारण कर।

(३) कामी पुरुषों से अपनी रक्षा करने वाली हो अर्थात् यदि तू मन को दृढ़ रक्खेगी तो कोई भी कामी पुरुष तुझको पतिव्रत धर्म से गिरा नहीं सकता।

(४) सौ वर्ष की आयु वाली तथा घन सन्तान वाली हो। फिर (या अकृन्तन्) इत्यादि मन्त्र बोलकर वर उपवस्त्र व उत्तरीय वस्त्र देता

है जिसको वधू यज्ञोपवीत की तरह धारण करती है, या कन्धे पर ओढ़ती है, यह उपवस्त्र एक चादर होता है।

अग्नि कैसे उत्पन्न करें

प्राचीनकाल में अरणिमन्थन के द्वारा अग्नि निकाली जाती थी जिसमें पाँच वस्तु होती थीं उत्तरारणि, अधरारणि, पात्र, ओवलि और मन्थन। यह सब होने पर भी कुछ समय अधिक लगता था। अतः अब कपूर वा दियासलाई से अग्नि निकालते हैं। पर दियासलाई से प्रज्वलित घृत दीपक से यदि अग्नि ली जाय तो उत्तम हो।

इन सब दिक्कतों को दूर करने के लिए जो ब्राह्मण अहिताग्नि हो उसके घर से अग्नि मँगवाना लिखा है। यदि ब्राह्मण न मिले तो क्षत्रिय या वैश्य के ही घर से मंगवाले। गोभिल गृह्य सूत्रकार तो भड़भूजे तक के घर से अग्नि मंगवाने में दोष नहीं मानते। उस समय भड़भूजे लीद नहीं जलाते थे शुष्क पत्र या काष्ट या गोमयाग्नि से ही काम चलाते थे। अग्नि लाने के लिये कांस्य पात्र या मिट्टी का पात्र उपयुक्त होगा। पर यह सब बातें कपूर के आविष्कार से पूर्व की हैं।

ऋत्विग्गण

ब्रह्मा—यह दक्षिण दिशा में उदङ् मुख बैठता है।

अध्वर्यु—इसका आसन वेदी के उत्तर में दक्षिणाभिमुख होता है। उद्गाता वेदी के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठता है।

होता—वेदी के पश्चिम भाग में पूर्वाभि मुख बैठता है। यजमान भी होता बनाया जा सकता है।

आचार्य—उसका आसन ब्रह्मा के समीप होता है, यह भी उत्तराभिमुख दक्षिण आदि दिशा में बैठता है।

इसके अतिरिक्त—

आग्नीध्र—इसका कार्य अरणि से अग्नि निकालना तथा यज्ञ कुण्ड की अग्नि को प्रज्वलित रखना है।

पोता—होम सामग्री काष्ठादि की देखभाल करना इसी का काम है। कोई सामग्री निमटी या नहीं, घी वेजीटेबुल तो नहीं यह देखना इसकी ही जिम्मेदारी है।

ग्रावग्राभ—यज्ञ के संवन्ध में सिलबट्टे से पीसने या कुचलने या लकड़ी फाड़ने, दूध जमाने, दही मथने आदि का कार्य इसके ही जुम्मे होता है।

शस्ता—यज्ञकर्म में समय-समय पर सूचना देना, प्रशस्ति पाठ करना, लोगों का परिचय देने का कार्य इसके अधीन होता था।

आवया:—दान कार्य के अधिष्ठाता को आवया: कहते थे। जो भी यज्ञ संबन्ध में दान देता या लेता था उसकी उचित व्यवस्था आप ही करता था।

इसी प्रकार ब्राह्मणाच्छंसी और नेष्टात्य आदि भी ऋत्विक् होते थे। पर अब मुख्यतया ५ ही प्रचलित हैं।

ऋत्विक् वरण किस समय होना चाहिए ?

कुछ पंडित गण वर्ण वर-वधू के द्वारा यज्ञ के आरम्भ में तथा कुछ विवाह कर्म के आरम्भ में वर्ण कराते हैं। इस विषय में कार्य चार हैं, कोई नियम नहीं। यदि यज्ञ के आरम्भ में वरण में 'वरण' हो तो उत्तम है। 'पुरोहित स्थापन' भी विवाह कर्मारम्भ में किया जा सकता है, उसको यज्ञ के आरम्भ में ही करना कोई महत्व नहीं रखता। स्वामी जी ने जो 'पुरोहित स्थापना' उस समय लिखी है वह दूसरी चीज है। ऋत्विग् वरण और पुरोहित स्थापन में भेद है। यह पुरोहित स्थापन यदि पूर्व में चाहें तो पूर्व में भी हो सकता है। परन्तु आदि में ही इस कार्य का करना ठीक भी होगा।

क्या कन्यादान के समय बीच में पात्र रक्खा जाय ?

कन्यादान करते समय वर वधू के मध्य कढ़ाई या कोई पात्र रख देते हैं—यह केवल सुविधा के लिए है। जिससे यदि कोई जल आदि डालें तो कढ़ाई में ही गिरे। यह विषय 'सन्तान गो पाल पद्धति' (खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई से मुद्रित) में विशेष रूप से उल्लिखित है। कुछ भी हो यह लोकाचार है, पर कन्यादान के समय कन्या का मुख पश्चिम की ओर तथा वर का पूर्व की ओर अवश्य होना चाहिए।

कलश स्थापन व मनुष्य का सदण्ड बैठना

वर पक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक घट को लेकर यज्ञ कुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलश को भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे वर जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो तब तक बैठा रहे।

बड़े हवन का आरम्भ होने से पूर्व कलश स्थापन की आवश्यकता इसलिए है कि यदि कहीं किसी के कपड़े आदि को आग लग जाय तो उस समय पानी के लिए दौड़ना न पड़े। यज्ञ मण्डप के ईशान कोण में (अर्थात् उत्तर पूर्व के कोने में) धान या जौ बिछा कर कलश (घट) रखने की विधि है, इस कलश पर कुछ चित्रकारी कर देनी चाहिए। प्रदक्षिणा के समय यह कलश भी साथ रहना चाहिए। विवाह संस्कार की रक्षा के लिये एक 'दण्डधर' पुरुष की नियुक्ति की जाती है। ये दोनों पुरुष वर पक्ष के ही होने चाहिए, तथा विवाह की समाप्ति पर्य्यन्त उतराभिमुख बैठे रहें।

पुरोहित नियुक्ति

'ओ३म् प्रमे पतियानः०' इस मन्त्र से वधू की मंगल कामना के पश्चात् यथा विधि यज्ञ कुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की नियुक्ति करे। संस्कार विधि में 'कार्यकर्ता' शब्द से

जिसे निर्दिष्ट किया गया है उसका कार्य वर वधू की आवश्यक वस्तु देने में सहायता करना है।

राष्ट्रभृत्–जया व अभ्यातान होम

ऋताषाड्आदि १२ मन्त्रों 'की राष्ट्रभृत्' वैदिक संज्ञा है। जिन मन्त्रों से राष्ट्र का धारण होवे, वे मन्त्र राष्ट्रभृत् कहाते हैं।

औचित्य से एक परिवार भी राष्ट्र है, राष्ट्रं विभर्ति—इति। यह इस पदका निर्वचन है। चित्तंच स्वाहा इत्यादि १८ मंत्रों 'की अभ्यातान' वैदिक संज्ञा है। जिन मंत्रों से देवताओं ने असुरों पर अभ्यातानन अर्थात् शस्त्र प्रहार किया वे मन्त्र अभ्यातान संज्ञक हैं, संस्कार-विधि में अभ्यातन पाठ है पर यह अशुद्ध है यहाँ पारस्कर का मूल पाठ—'अभ्यातानांश्च जानन्' ऐसा है। यथैव अभ्यातानैर सुरान् अभ्यातनन् तदभ्याताना नामभ्यातान त्वमिति श्रुतिः।'

"अमोऽहमस्मि०" मन्त्र का अर्थ

हे कन्ये! अमति (व्याप्नोति) (नमिनोतीतिवा) अमः (ईश्वरः) अहमस्मि, सूते विश्वमिति (अकारेण सहवर्ततेइतिवा) सा (लक्ष्मी-रूपा) त्वमसि (तत्संयुक्त सामवेदोपलक्षिता वा वांस्वः) साماहमस्मि ऋक्त्वम् (अर्चनीया अर्चिका या त्वमसि) इत्थमेव, अहं द्यौः (पर्जन्यः) अस्मि, त्वं पृथिवी (क्षेत्रम्) असि। प्रजनयावहै (उत्पाद यावः पुत्रान् पुत्रपौत्रादीन) वह्नन्विन्दावहै (लभावहै) ते (पुत्राः) जरदष्ट्यः (शतायुषः) सन्तु आवामपि संप्रियौ (सम्यक् प्रीतौ परस्पर प्रेम शालिनौ रोचिष्णू (सुदीप्तौ शोभमानौ) सुमस्यमानौ (शोभन मनोवृत्तिकुर्वाणौ) असाव (भवाव) इत्यादि स्पष्टम्।

परिक्रमा के समय अग्नि प्रज्वलित ही रहे

अग्नि की साक्षी में मैत्री करने का पुराना प्रकार है। रामायण के 'किष्किन्धा काण्ड' के ५ वें सर्ग में निम्नलिखित पद्य हैं :—

रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः
गृह्यतां पाणिना पाणिः मर्यादा बध्यतां ध्रुवा ॥११॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्,
संप्रहृष्ट मना हस्तं पीडयामास पाणिना ॥१२॥
ततो हनुमान सन्त्यज्य भिक्षुरूप मरिन्दमः,
काष्ठयोः स्वेनरूपेण जनयामास पावकम् ॥१३॥
दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पै रभ्यर्च्य सत्कृतम् ।
सुग्रीवो राघव श्चैव वयस्यत्व मुपागतौ ॥१४॥
ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ ।
अन्योन्य मभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः ॥१५॥

अर्थात् सुग्रीव ने मैत्री करने के लिये हाथ बढ़ाया, तथा हनूमान ने तत्काल अग्नि मन्थन करके अग्नि प्रकट की, अग्नि मंथन करते समय हनूमान ने भिक्षु रूप छोड़ कर अपना असली रूप धारण कर लिया था। तदनन्तर अग्नि देव की प्रदक्षिणा करके राम और सुग्रीव मित्रता के दृढ़ बन्धन में बँध गये। इत्यादि।

परिक्रमायें व लाजा होम

संस्कार विधि में यज्ञ की महिमार्थ तथा सूचनार्थ दो परिक्रमायें लिखी हैं उनमें पहली परिक्रमा का आधार पारस्कर गृह्य सूत्र के गदाधर भाष्य का "अघोर चक्षुरिति मंत्र पाठः, दम्पत्योरग्नेः प्रदक्षिणी करणम्" यह लेख है। एवं दूसरी परिक्रमा जो "अमोहमस्मि" इस मन्त्र से पूर्व की जाती है। उसका आधार आश्वलायन गृह्य सूत्र का :-

"प्रदक्षिणमग्नि मुद कुम्भम् च त्रिः परिणयञ्जपति अमोहमस्मि इत्यादि" लेख है। शेष चार परिक्रमायें निर्विवाद सर्व सम्मत हैं। इन चार परिक्रमाओं में आदि की तीन परिक्रमाओं के समय शिलारोहण, लाजा होम, तथा परिक्रमा के मन्त्र पढ़ने चाहिए। इन तीनों परिक्रमाओं में वर वधू की हस्ताञ्जलि पकड़े रहे, चतुर्थ परिक्रमा में

शिलारोहण व हस्ताञ्जलि ग्रहण न करें और लाजा होम भी केवल 'ओ३म् भगाय स्वाहा' इस मन्त्र को बोल कर एक बार ही करें। यह परिक्रमा मौन रह कर करनी चाहिए। परन्तु पारस्कर गृह्य सूत्र के भाष्यकार 'गदाधर भट्ट' "भगाय स्वाहा" को तीन बार बोल कर तीन आहुति दें ऐसा लिखते हैं।

लाजा होम की आहुति

हस्ताञ्जलि में एक बार ली हुई लाजाओं से ही तीन बार थोड़ी थोड़ी करके तीनों मंत्रों से आहुति देनी चाहिए। ऐसा 'हरिहरि भाष्य' में लिखा है। पर तीन वार लेना ही उचित है।

आजकल लाजा होम की व्याख्या निम्न प्रकार से भी की जाती है। जहां वैद्यक में धान की खीलों के अनेक गुण बताये हैं वहां इन खीलों की आहुति देकर वर वधू को विवाह की वास्तविकता बड़े मार्मिक रूप में दर्शाई गई है। धान दो जगह बोये जाते हैं तथा कोमल हैं। इसी तरह कन्या भी पितृ गृह पति गृह में पलती है कोमल भी है। विवाह का प्रधान उद्देश्य सन्तति उत्पन्न करना है, वह तभी पूर्ण हो सकता है जब स्त्री का पुरुष के साथ सहयोग हो। यहां भूसी स्त्री के समान व पुरुष चावल के समान है, यद्यपि चावल भूसी से पृथक् अधिक मूल्यवान होकर मंहगा बिक सकता है, परन्तु अपनी उत्पादक शक्ति को नष्ट कर देता है। उन चावलों को बोकर कोई भी कृषक अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकता। संतति उत्पन्न करने के समय कितना भी मंहगा चावल क्यों न हो उसे उस तिरस्कृत भूसी की सहकारिता अपरिहार्य है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सन्तानेच्छु पुरुष को अपनी सहधर्मिणी की यथोचित प्रतिष्ठा करनी आवश्यक है, इत्यादि अनेकों भाव इस लाजा होम के मन्त्रों में पद २ पर दर्शाये जा रहे हैं।

पहली तीन परिक्रमाओं में वधू तथा एक परिक्रमा में वर आगे रहता है।

आदि की तीन परिक्रमाओं में वधू आगे रहती है ; क्योंकि रक्षक सर्वदा पीछे ही चलता है तथा आदि के तीन आश्रमों में स्त्री की ही प्रधानता है। ब्रह्मचर्याश्रम में भी भिक्षा के समय मातृरूप से, और शिक्षा के समय गुरुपत्नी रूप से स्त्री ही ब्रह्मचारी की आदरणीया है। चतुर्थ परिक्रमा में वर आगे रहता है क्योंकि सन्यासाश्रम में स्त्री सम्बन्ध को छोड़ कर मनुष्य आत्मचिन्तन करता है, इसी भाव को वर आगे होकर जन समूह को दिखा रहा है और कह रहा है कि चतुर्थ आश्रम में जब मैं सन्यास आश्रम में दीक्षित होऊँगा तब मेरा और इस स्त्री का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। इत्यादि।

आधुनिक व्याख्या में यह भी कहा जाता है कि पृथिवी सूर्य की १ वर्ष में यानी ३ अयनों (उत्तरायण, दक्षिणायन और अन्तरयन) में प्रदक्षिणा करती है और सूर्य पृथिवी की एक ही दिन में प्रदक्षिणा कर लेता है। इस प्रकार सूर्य रूपी पुरुष, पृथ्वी रूपी स्त्री से तिगुना श्रेष्ठ है इत्यादि, अनेक व्याख्यायें की जा सकती हैं। 'सरस्वती प्रेदमव' इस मंत्र की आज्ञानुसार सीता, दमयन्ती आदि के उच्च आदर्श चरित भी यहाँ सुनाने चाहिए। कतिपय विद्वान चारों प्रदक्षिणाओं में वर का ही आगे रहना मानते हैं पर यह लोकाचार विरुद्ध है।

संस्कार विधि में जो भाषा है उसमें लिखा है कि 'तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार कलश सहित यज्ञ कुण्ड को प्रदक्षिणा कर पुनः दो बार इसी प्रकार अर्थात् सब मिल के चार परिक्रमा करके अन्त में यज्ञ कुण्ड के पश्चिम में थोड़ा ठड़े रह कर उक्त रीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात् इत्यादि। यह भाषा कुछ अशुद्ध प्रतीत होती है। यदि यह इस प्रकार कर दी जावे तो ठीक हो। तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार कलश सहित यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दो बार इसी प्रकार परिक्रमा करके अन्त में यज्ञ कुण्ड के पश्चिम में थोड़ा ठढ़े रहके उक्त रीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात्' इत्यादि।

क्योंकि पूर्वोक्त पाठ में पूर्वापर विरोध है। यथा—पहिले एक परि-

क्रमा को दिखला कर फिर दो बार उसी प्रकार परिक्रमा करना लिखा है। इस तरह परिक्रमायें तीन होती हैं चार नहीं। वहाँ पर 'अर्थात् सब मिला कर चार' यह लिखना उचित नहीं प्रतीत होता। संभव है कि यह पाठ इस स्थल पर भूल से मिल गया हो क्योंकि उसके निकाल देने पर भाषा तथा भाव दोनों ठीक हो जाते हैं। परिक्रमा वस्तुतः चार होती हैं पर यहां तीसरी परिक्रमा के अनन्तर चौथी परिक्रमा का विधान भी भूल से रह गया है'। जोकि 'ओ३म् भगाय स्वाहा। इदं भगाय इदन्न मम' इस लाजाहुति के पश्चात् होना चाहिए इसका आधार पारस्कर गृह्य सूत्र का निम्न लिखित लेख है। एवं द्विरपरं लाजादि, चतुर्थे शूर्पकोष्ठया सर्वांल्लाजा नावपति भगाय स्वाहेति, इस पर भाष्य करते हुए हरिहर मिश्र लिखते हैं कि—'एवं पुनर्वार द्वयं लाजावपनादि परिक्रमणान्तं कर्म विशेषः भवति ततस्तृतीय परिक्रमणान्तर कुमार्यां भ्राता शूप कोटि प्रदेशेन सर्वान् लाजान् कुमार्यञ्जलावावपति तां तिष्ठंती कुमारी भगाय स्वाहेत्यन्तेन जुहोति। इद भगाय। ततः समाचारौ तूष्णी चतुर्थं परिक्रमणं कुरुतः। नेतरथा वृत्तिम्। अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से लाजा होम से लेकर परिक्रमा तक दो बार और करना पुनः तृतीय परिक्रमा के अनन्तर वधू का भाई सूर्प के कोने से सब खीलों को वधू की अञ्जलि में डालता है उनको यह खड़ी रह कर ही 'ओ३म् भगाय स्वाहा' इस मन्त्र से होम करती है। इसके अनन्तर चौथी परिक्रमा को वर वधू दोनों चुपचाप करें। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि तृतीय परिक्रमा के अनन्तर 'ओ३म् भगाय स्वाहा' इस मन्त्र से सम्पूर्ण लाजाओं का होम करे तत्पश्चात् मौन रूप से चतुर्थ परिक्रमा करें। इस परिक्रमा का मौन रूप से करने के लिये आश्वलायनादि कई गृह्य सूत्रों में लिखा है।

संस्कार विधि की पूर्वोक्त भाषा उक्त हरिहर भाष्य का छायानुवाद मात्र है। केवल भूल से भाषा अशुद्ध हो गई है जिससे कि भावार्थ भी नष्ट हो जाता है।

चार बार फेरे उसी क्रम से अर्थात् शिलारोहण तत्पश्चात् लाजा होम, मन्त्र पाठ और परिक्रमा वाले दो मन्त्र पढ़ते हुए जब चार फेरे समाप्त हो जाँय ऐसा करना चाहिए।

इन परिक्रमाओं के करने का नियम यह है कि प्रथम तीन परिक्रमाओं में वधू को आगे तथा वर को पीछे रखना चाहिए और चतुर्थ परिक्रमा में वर को आगे तथा कन्या को पीछे रखना चाहिए। वस्तुतः मुख्य प्रदक्षिणायें चार ही होती हैं; परन्तु लोक में जो सात प्रदक्षिणायें प्रसिद्ध हैं उनकी संख्या अन्यत्र मूल संस्कार में लिखी दो प्रदक्षिणाओं से तथा सप्तपदी विधि के अवसर पर जब कि वधू को वर ईशान कोण में चलाता है उस पूरी प्रदक्षिणा के कर लेने पर पूर्ण हो जाती है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रदक्षिणा अग्नि को दक्षिण हाथ की ओर करके ही की जाती है।

सप्तपदी व्याख्या व ग्रन्थि बन्धन

"सप्तपदी के पहिले मंत्र में बतलाया गया है कि गृहस्थाश्रम का सबसे मुख्य साधन 'अन्न' है। बिना अन्न के यह आश्रम चल ही नहीं सकता इसीलिए पुराने समय में अन्न धन से युक्त होने पर ही विवाह किया करते थे। इसी मन्त्र में दूसरी बात पति यह कह रहा है कि तू मेरी अनुव्रता हो। व्रत शब्द के अर्थ सत्व और धर्मयुक्त संकल्प वा नियम के हैं।

पापाचरण का नाम व्रत नहीं है। इसलिए जो लोग यह कहते है कि पति की चाहे कितनी ही पापयुक्त आज्ञा क्यों न हो, स्त्री को माननी ही चाहिये, वे व्रत शब्द के भाव को समझते ही नहीं। फिर कहा गया है कि सर्वव्यापक परमात्मा तेरी धर्म पालन में सहायता करे। फिर दर्शाया गया है कि हम दोनों मिल कर बहुत सी सन्तान को प्राप्त करें। कितना शोक का विषय है कि प्राचीन शास्त्रों की प्रयोग शैली को न

समझ कर लोग जहाँ पुत्र शब्द सन्तान के अर्थ में आता है वहाँ इसके अर्थ केवल लड़के के ही लेकर लड़कियों को सन्तान ही नहीं समझते।

अब प्रश्न यह रह गया कि "बहुत शब्द" का क्या तात्पर्य है ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि वेद ने दश सन्तान तक उत्पन्न करने की आज्ञा दी है; परन्तु रोगी सन्तान नहीं। किन्तु सुपुत्र सर्व प्रकार से अच्छी सन्तान। पर इसका अर्थ नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य दश सन्तान जरूर ही उत्पन्न करें। 'इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्रानाधेहि' इत्यादि मंत्र में जो दश सन्तान तक गृहस्थाश्रम के पचीस वर्षों के अन्दर उत्पन्न करने का आदर्श है। उसमें दो शर्तें भी वेद ने साथ ही लगा दी हैं कि सुपुत्र उत्पन्न करने वाली और ऐश्वर्य युक्त सन्तान उत्पन्न करें। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को ऐसी दश सन्तान उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन है।

अन्य देशों में चार से अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करते। कारण कि सन्तान को सुपुत्र अर्थात् सुशिक्षित करने के लिये कि कितने धन और परिश्रम की आवश्यकता है ? भारत में भी चार सन्तान ही आजकल बहुत समझनी चाहिए। शीघ्र प्रसूति से स्त्रियाँ मर जाती हैं 'इषे एक पदी भव' इत्यादि मन्त्र जिसकी हम व्याख्या कर रहे हैं, इसमें सन्तान बहुत तो मांगी हैं परन्तु उसके साथ शर्त लगा दी है कि वह वृद्ध अवस्था तक जीने वाली हों। इसलिए ऐसी दीर्घजीवी सन्तान बहुत अर्थात् दश तक उत्पन्न करना अति कठिन है। मर जाने वाली, सदा रोगी रहने वाली विद्या-सुशिक्षा हीन सन्तान उत्पन्न करना ऋषि लोग अभीष्ट नहीं समझते थे। इसलिए स्त्री और पुरुष के मन पर यह बात लिखी जावे कि कैसी उत्तम और वृद्धावस्था को भोगने वाली सन्तान हमको पैदा करनी है, इस बात को सात बार दोहराया गया है।

दूसरे मन्त्र में और तो सब बातें वही हैं किन्तु अन्न की रक्षा करने वाले और अन्न को पचाने वाले शारीरिक बल का वर्णन अधिक है। हमारे देश में अमीर बहुत हैं परन्तु अन्न को पचाने के लिए व उसकी

रक्षा करने के लिए अपने शरीर में बल के होने की जरूरत है। काम-धंधा तथा श्रम में आनन्द अनुभव करने से बल की वृद्धि होती है और विषयासक्ति से वचना भी बल वृद्धि का परम साधन है। तीसरे मन्त्र में बल को चलाने वाले विज्ञान की आवश्यकता दर्शाई गई है। शारीरिक बल किसी काम का नहीं यदि इसके साथ ज्ञान का बल न हो।

चौथे मन्त्र में सुख की प्राप्ति एक बड़ा भारी लक्ष्य है। जिसकी ओर यहां पर वर वधू की दृष्टि दिलाई गई है। पाँचवें मन्त्र में संतान से युक्त होना और उनको सुशिक्षित बनाना परम कर्तव्य है जिसके लिए धन, बुद्धि और बल की परम आवश्यकता है। छठे मन्त्र में ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार करना जिससे आरोग्यता की वृद्धि हो एक परम कर्तव्य है।

सातवें मन्त्र में स्त्री को सखी कहा गया है, जिसका भाव यह है कि वे दोनों एक दूसरे के मित्र हैं। जो लोग स्त्रियों को दासी कहते हैं वे जरा इस 'सखे' शब्द पर विचार तो करें। सार यह है कि गृहाश्रम की सिद्धि के ये सरल साधन हैं :—

(१) अन्न (२) शारीरिक बल (३) ज्ञान (४) सुख (५) संतान (६) ऋतुओं के अनुकूल बर्ताव व भोजन (७) मित्रता।

—: लाजा की पूर्णाहुति :—

"तब वधू की माँ सूप को तिरछा करके शेष रही हुई धानी केवल वधू की हस्ताञ्जलि में डाल देवे।" (संस्कार विधि)

सूप को तिरछा करना इसलिए लिखा गया है कि कोई खील बाकी न रह जाय। यह विदित रहे कि 'लाजा होम के समय तथा इस पूर्णाहुति के समय अग्नि प्रज्वलित होनी चाहिए। इस पूर्णाहुति के समय वधू वर की हस्ताञ्जलि एकत्र नहीं होनी चाहिए। वधू की माता केवल वधू की ही हस्ताञ्जलि में लाजा डाले।

ग्रन्थि बन्धन पर विचार

'वस्त्रैः संयोज्य तौ पूर्वं कन्यादानं समाचरेत् ।
दानेन युक्तयोः पश्चाद् विदध्यात् पाणि पीडनम् ।'

यह श्लोक योगि-याज्ञवल्क्य के नाम से प्रसिद्ध है। तथा ग्रन्थि-बन्धन, पाणिग्रहण से पूर्व हो यह सिद्ध किया जाता है। पर यह श्लोक याज्ञवल्क्य स्मृति में कहीं भी नहीं मिलता। न अन्य आपस्तम्ब, बौधायन, खादिर जैमिनि, हिरण्यकेशि आदि गृह्य सूत्रों में ही ऐसा मिलता है। प्रत्युत—

'अन्वारब्धाया मुत्तराहुतिर्जुहोति ।' (आपस्तम्ब गृह्य० ४।११।५)
'अग्निमुप समाधाय दक्षिणतः पतिं भार्योपविशति
आचान्ते समन्वारब्धायां परिसिञ्चति ।'
(हिरण्यकेशि गृह्य० ५।४।५)

पाणिग्रहणस्य दक्षिणत उपवेशयेद, अन्वारब्धायां स्रुवेणोपधानं महात्यादतिभि राज्यं जुहुयात् । (खादिर गृह्य० १।३।७)

"दक्षिणतः भार्यामुपवेश्य" (जैमिनि गृह्य० १।२०)

"अलं कृतां कन्या मुदक पूर्णां दद्यात् ।'
(आश्वलायन गृह्य० १।६।७)

"अन्वारभ्याऽऽ घारावाज्य भागौ हुत्वा" ।
(वाराह्य गृह्य खण्ड १४)

"अक्षन्वा रब्धायां प्रदक्षिण मग्निं परिसिञ्चति"
(बौधायन गृह्य १।३।२१)

भट्ट कुमारिल प्रणीत आश्वलायन गृह्य सूत्र कारिका में भी—
बद्ध्वा वस्त्रान्त मुनयोः प्राङ्मुखौ च ततः परम् ।
होमदेशे व्रजेतां तौ परिगृह्य करौ मिथः । (१।२०।१९)

अतः पाणिग्रहणान्तर ही अन्वारम्भण करना चाहिए। इस अन्वारम्भ का सूचक ही ग्रन्थिवन्धन लोकाचार में किया जाता है। इसलिए पाणिग्रहण से पूर्व ग्रन्थिवन्धन शास्त्र सम्मत नहीं यह सिद्धान्त है।

—: ग्रन्थि-वन्धन :—

कार्यकर्त्ता सप्तपदी से पूर्व कन्या पिता के दिये हुए वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गाँठ दे, इसी को गठ-जोड़ा भी कहते हैं। ग्रन्थि-बन्धन के समय सुपारी, हल्दी तथा अक्षत आदि रखने का आचार है। सप्तपदी के समय वर वधू बरायर में उत्तराभिमुख खड़े रहें तथा वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण कन्धे पर रक्खे रहे। सप्तपदी भी विवाह का प्रधान अंग समझा जाता है। इन सात मन्त्रों से आज कल के व्याख्याकार कङ्कण (कङ्गना) वाँधना भी बताते हैं। क्योंकि वेद मंत्र में अन्न, वल, ज्ञान, धन, सुख, सन्तति ऋतु प्रेम इन वस्तुओं से गार्हस्थ्य चलता है। यह कहा है इस बात को ही कंगने (कङ्कण) में स्थित जौ (अन्न) लोहे का छल्ला (वल) कौड़ी (धन, ज्ञान, जौ का आटा) लाल रग का डोरा (मय, सुख, प्रेम) जौओं की बहुलता (प्रजा) कलावे के छः रंग (ऋतु) सब के इकट्ठे होने से कंगना बनना (संख्या) इत्यादि तथा अनेक अन्य कल्पना भी की जाती हैं।

—: ग्रन्थि-वन्धन का मन्त्र :—

अभित्वा मनु जासेन दधामि मम वासस्य यथासोमम्।
केवलोनान्यासां कीर्तयाश्चन॥

अथर्व कां० ७। सू० ३७ मन्त्र ३।

—: स्त्री के वामाङ्ग में बैठने का प्रमाण :—

"उत्तरत आयतना हि स्त्री" (शत० ब्रा० ८।४।४।११) अर्थात् अन्य यज्ञादि के समय स्त्री वामाङ्ग ही बैठे।

—: सप्तपदी के मन्त्रों का आशय :—

कन्या के प्रति वर का कथन :—

मेरे अतिथियों को उत्तम अन्न-पान खिलाना।

कन्या का प्रति वचन :—

तवार्जितै रत्नवरैः सुरक्षैः सुपार्चितैस्त्वां परितोषयामि ।
तव स्ववर्गं च समस्तमेव त्वदाज्ञया साधु सभाजयामि ॥

-: द्वितीय मन्त्र का आशय :-

वर का कथन :—

तुम्हारे द्वारा बनाये हुए अन्न से हम सब का बल बढ़े ।

वधूक्ति :—

यथाबलं त्वद् गृह पारिणाह्यं, परीक्ष्य शौचादि विधानतोऽहम् ।
ऊर्जाप्रदं रोगहरं त्वदर्थे कुटुम्बपुष्ट्यै परिसाधयामि ॥

-: तृतीय मन्त्रार्थ :-

वरोक्ति :—

द्रव्यक्षेम विचार भार मखिलं दत्वा त्वदीये करे ।
नानोपाय विधानतः स्वयनहं द्रव्याणि संप्रार्जयन् ॥
स्वं राष्ट्रं धनपूरितं विरचयन्नर्थंश्च धुर्यैः शुभैः ।
स्वर्लोकं प्रभवामि जे तुमिह हि प्राज्ये स्वराष्ट्रे स्थितः ॥

वधूक्ति :—

गार्हस्थ्य साधन समस्त पदार्थ वर्ग—मूलं धनं विधिवदर्जित मस्ति यत्ते,
आय व्ययादि सुपरीक्ष्य निदेशतस्ते, त्वत्प्रीतये बहुविधं परिवर्धयामि ॥

-: चतुर्थ मन्त्र का भाव :-

घर की प्रत्येक वस्तु का भार तुम्हें ही सौंपा जायगा । तथा इस प्रकार तुम्हें हमारी कीर्ति का विस्तार करना होगा ।

वधूक्ति :—

आवश्यकानि विविधानि गृहे त्वदीये,
वस्तूनियानि गृहिणीं सुख साधनानि ।
तेषां महं समुदयं विरचय्य नूनं,
त्वामाप्त वर्ग सहितं सुखयामि तावत् ॥

-: पञ्चम मन्त्रार्थ :-

वरोक्ति :—

मेधा कान्ति बलादि जनने गव्यं परं कारणम्,
तन्मूलं पशु वृन्द पालन मतस्त्वाँ तद् व्यवस्थापने ।
वार्ताज्ञे ! विनियोज्य राष्ट्रभरणे कुर्वन् प्रयत्नं सदा,
जाने लोकमहं त्वया सह पुनर्जेष्यामि शुद्धाशये !

वधूक्ति :—

दधि दुग्ध घृतादि साधनम् कृषि वाणिज्य निमित्त मस्ति यत् ।
सुखदं परमं कुटुम्बिनाम् पशुवृन्दं परिपालयामि तत् ।।

-: षष्ठ मन्त्रार्थ :-

वरोक्ति :—

आत्मायं परमो बहिर्मुख महानन्दाय बद्धीकृत—
स्तस्मात्त्वं परिणीय चित्तरचितं सर्वर्तु सौख्यं भजन् ।
राष्ट्रप्रीणन तत्परं सुयशसं वंश प्रतिष्ठापयन्
जेष्यामि प्रथितं त्वयासह तपोलोकं विशुद्धाशये ?

वधूक्ति :—

अद्वैत भाव मुपगम्य तवाज्ञयैव,
तत्तद्हृषीक सुख साधन ता मुपेता ।
सर्वासु तासु ऋतुषु त्वयि बद्ध भावा
त्वामर्चयामि नितरां परितोषयामि ।।

-: सप्तम मन्त्रार्थ :-

वरोक्ति :—

सख्यं साप्तपदीन मत्र मुनयः संपूर्ण माहुः सदा ।
तेन त्वामभिगम्य सप्तममहं लोकं जयामि ध्रुवम् ।।
मोक्षार्थं हृदयं विधाय भवतो राष्ट्रस्य संभावने ।
मामेवाऽनुगता भविष्यति तदा मोक्षो न नो दुर्लभः ।।

वधूक्ति :—

प्राप्तं मया मनुज देह फलं समस्त
यत्सख्यमुत्तममहं भवता गताद्य ।
सर्वं प्रति श्रुत मिदं हृदये दधाना
त्वामेव पूर्ण हृदयेन सभाजयामि ॥

सप्तपदी व लोकाचार

सप्तपदी के बाद निम्नलिखित श्लोक बोलने या बुलवाने की प्रथा पर यह अधिक उपयुक्त नहीं ।

कन्या प्रश्नावली :—

(१)

तीर्थ व्रतोद्यापन दान यज्ञान् मया सहत्वं यदि कान्त ! कुर्याः ।
वामाङ्ग मायामि तदा त्वदीयं जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी ॥१॥

(२)

हव्य प्रदानै रमरान् पितॄंश्च कव्य प्रदानै यदि पूजयेथाः ।
वामाङ्ग मायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं द्वितीयम् ॥२॥

(३)

कुटुम्ब रक्षा भरणे यदित्वं कुर्याः पशूनां परिपालनं च ।
वामाँग मायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं तृतीयम् ॥३॥

(४)

आयं व्ययं धान्य धनादिकानां पृष्ट्वा गृहे संग्रहणं विदध्याः ।
वामाङ्ग मायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं चतुर्थम् ॥४॥

(५)

देवालया ऽऽ राम तडाग कूप वापी विदध्या अथ पूजयेथाः ।
वामाङ्ग मायामि तदा त्वदीयं इत्थं वचः पञ्चममाह कन्या ॥५॥

(६)

देशान्तरे वा स्वपुरान्तरे वा सदा विदध्यां क्रय विक्रयौ त्वम् ।
वामाङ्ग मायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च षष्ठम् ॥६॥

(७)

न सेवनीया परकीय योषा त्वया भवेत् कान्त ! मनोहरापि ।
वामाङ्ग मायामि तदा त्वदीयं सा सप्तमं वाक्य मुवाच कन्या ॥७॥

वर का उत्तर :—

मदीय चित्तानुगतं च चित्तं सदा मदाज्ञा परिपालनं च ।
पतिव्रता धर्म परायणा त्वं कुर्याः तदा सर्वमिदं विधास्ये ॥

[सप्तपदी]

धनं धान्यं च मिष्ठान्नं व्यञ्जनाद्यं च यदगृहे ।
मद धीनं भवेत् सर्वं वधूराद्ये पदे वदेत् ॥

कुटुम्वं प्रथयिष्यामि सदा ते मञ्जु भाषिणी ।
दुःखे धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये साऽब्रवीद् पदे ॥

ऋतौ काले शुचिः स्नाता क्रीडिष्यामि त्वया सह ।
नाहं परपतिं यायां तृतीये साऽब्रवीत् पदे ॥

लालयिष्यामि केशान्तं गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
काञ्चनैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीये साऽब्रवीद् वरम् ॥

सखी परिवृता नित्यं गौर्याराधन तत्परा ।
त्वयिभक्ता भविष्यामि पञ्चमे साऽब्रवीद् पदे ॥

यज्ञे होमे च दानादौ भवेयं तव वामतः ।
यत्रत्व तत्र तिष्ठामि पदे षष्ठेऽब्रवीद्वरम् ॥

प्रेम्णा समनुवर्तिष्ये भवन्तं जानकी यथा ।
पतिव्रता भविष्यामी त्याहस्म सप्तमे पदे ॥

सुहृद्वर डा० नरेन्द्र देव सिंह जी शास्त्री एम० ए०, डी० फिल्० के पितृचरण स्व० कविवर डा० बलदेव सिंह जी (मैनपुरी) रचित निम्नलिखित भजन बड़े ही मनोहर व भावपूर्ण हैं :—

कन्या कहती है :—

वचन दो सात तुम हमको तभी प्रियतम कहाओगे।
करो इकरार पंचों में उसे पूरा निबाहोगे ॥१॥

पकड़ कर हाथ जो मेरा मुझे पत्नी बनाया है।
तो किश्ती उम्र की मेरी किनारे पर लगाओगे ॥२॥

हमारे वस्त्र भोजन की फिकर करनी तुम्हें होगी।
वचन मन कर्म से प्यारे मुझे अपनी बनाओगे ॥३॥

विपत्, संपत् व बीमारी, गमी शादी व दुःख सुख में।
सदा हर हाल में मुझसे जुदा होने न पाओगे ॥४॥

जवानी में, बुढ़ापे में, बहारों में, खिज़ाओं में।
दया की दृष्टि से हरदम खुशी मुझको दिलाओगे ॥५॥

तिजारत, नौकरी, खेती, यजन, तप, दान-संबंधी।
करो तुम काम जब जारी हमें पहले जताओगे ॥७॥

जो बिगड़े काम कुछ मुझसे करो एकान्त में शिक्षा।
सहेली साथिनों में पर नहीं फटकार पाओगे ॥७॥

मुझे तज अन्य कान्ता को दिया गर दिल तो तुम जानो।
किए अपने की पाओगे जो मेरा मन जलाओगे ॥८॥

बना कर अग्नि को साक्षी बना अर्धांगिनी मुझको।
सदा सब कर्म में वामांग में मुझको बिठाओगे ॥९॥

वर का उत्तर :—

बचन देता हूँ मैं तुझको तुझे प्यारी बनाऊँगा।
मगर मैं कुछ प्रतिज्ञायें अभी तुमसे कराऊँगा ॥१॥

तुम्हें मैं धर्म की खातिर धर्मपत्नी बनाता हूँ ।
शपथ है उम्र भर अपना न पग पीछे हटाऊँगा ॥२॥
मगर आदेश पर मेरे कमर कस करके तुम रहना ।
हुई इस काम में गलती तो फिर घुड़की खिलाऊँगा ॥३॥
सिवा मेरे जो कोई हो मनुज मुझसे बहुत अच्छा ।
जो उसकी स्वप्न में इच्छा करी तो दिल हटाऊँगा ॥४॥
गृहाश्रम के लिये तुमको बनाया मैंने सहधर्मा ।
कठिन इस धर्म को तेरे बिना मैं कर न पाऊँगा ॥५॥
विपत सम्पत्ति में हरदम हमारे साथ तुम रहना ।
गुजारा उसमें ही करना कि जो कुछ मैं कमाऊँगा ॥६॥
दगा रक्खो जो कुछ दिल में तो अपने दिल की तुम जानो ।
मगर मैं धर्म से अपना वचन पूरा निबाहूँगा ॥७॥
वचन वेदोक्त हों इतने तुम्हें स्वीकार शुभ मन से ।
तो फिर सद्भाव से प्राणप्रिया तुमको बनाऊँगा ।।८।।

---o---

ऊमरी (बिजनौर) के निवासी स्व० श्री पं० वासुदेव जी शर्मा प्रणीत भजन :—

तुमसे वचन भरा के पत्नी बनाऊँगा मैं ।
जो भी करूँ प्रतिज्ञा पूरी निभाऊँगा मैं ॥१॥
पहली तो बात यह है सुन लो ऐ ! प्राणप्यारी ।
यदि हो पढ़ी तो अच्छा वर्ना पढ़ाऊँगा मैं ॥२॥
सच्चा तो व्रत यही है प्रण आज जो करोगी ।
व्रत रखके भूखों मरना हरगिज न चाहूँगा मैं ॥३॥
पाखण्ड आज तक जो तुमने किया सो भूलो ।
छुड़वा के पोप लीला आर्या बनाऊँगा मैं ॥४॥

जब जब मिलो किसी से तब तब झुका के सिर को।
कर जोड़ कर नमस्ते तुमसे कराऊँगा मैं ॥५॥

ईश्वर बिना किसी की पूजा न करने दूँगा।
पीरो मसान की सब पूजा छुड़ाऊँगा मैं ॥६॥

तकलीफ में तुम्हारी बेशक रहूँगा साथी।
लेकिन बुला के स्याने हरगिज न लाऊँगा मैं ॥७॥

माता पिता व बन्धु भाई बहिन कुटुम्बी।
कटु वाक्य इनके सम्मुख सुनने न पाऊँगा मैं ॥८॥

माता पिता की सेवा प्रीति से करनी होगी।
पशु दीन दास रक्षा तुमसे कराऊँगा मैं ॥९॥

सन्ध्या हवन से लेकर जो जो हैं यज्ञ पाँचों।
उनका नियम से करना तुमको सिखाऊँगा मैं ॥१०॥

मेले तमाशे तीरथ संगीत नाच रंग में।
जो जो भी है कुरीति सारी हटाऊँगा मैं ॥११॥

भोजन व वस्त्र भूषण तुमको मिलेंगे प्यारी।
लेकिन फिजूलखर्ची करना छुड़ाऊँगा मैं ॥१२॥

यह वेद मन्त्र की जो शिक्षा है उत्तमोत्तम।
जहाँ तक बनेगा मुझसे मानूं मनाऊँगा मैं ॥१३॥

पहिले कौन सा पैर धोये ?

ब्राह्मणो दक्षिणं पादं पूर्वं प्रक्षालयेत् सदा।
क्षत्रादिः प्रथमं वाममिति धर्मानुशासनम् ॥पाराशरः।

मस्तक पर जल के छींटे

(सप्तपदी) की क्रिया के पश्चात् वर वधू दोनों गाँठ बाँधे हुए

शुभ आसन पर बैठें। गाँठ बाँधे हुए बैठना यह बतलाता है कि उन्होंने प्रतिज्ञायें मिल कर पालन करने का व्रत धारण कर लिया है, गाँठ मिलाप का चिन्ह है, प्रेम और सहानुभूति का बोधक है, मित्रता का भी यह लक्षण है। तत्पश्चात् जो पुरुष दक्षिण दिशा में जल लिए हुए बैठा था वह पहिले से स्थापन किये हुए जल कुम्भ को लेकर वधू वर के समीप आवे और उसमें से थोड़ा सा जल लेकर वधू वर के मस्तक पर छींटे देवे और वर इस समय (ओ३म् आपो हिष्ठा:' इत्यादि चार मन्त्रों को, जो जल को शान्तिदायक बता रहे हैं, बोले। इस क्रिया का भाव आधिभौतिक अंश में तो माथे को ठंढक पहुँचाना है। इतनी देर तक बैठे रहने और यज्ञ कृत्य करने से माथा कुछ गरम होकर थकावट पैदा करता है और माथे की थकावट को उतारने के लिए मुख धोना अथवा माथे पर पानी का छींटा मार लेना भी ठीक है। आध्यात्मिक भाव इस क्रिया का यह है कि गृहस्थाश्रम में दोनों अपने विचारों को शान्त रख सर्वहित में लगाये रक्खें, और सबसे बढ़ कर यह बात है कि उन्होंने जो अपनी गाँठ बाँधी है वह मित्रता रूपी गाँठ तभी बँधी रह सकती है जब वे अपने विचारों में शान्त रहें और सहनशीलता धारण करते हुए परस्पर कल्याण की भावना करते रहें। मित्रता स्थिर रखने के दो साधन शान्ति रखना और कल्याण करना इन चार मन्त्रों में बतलाये गये हैं।

सूर्यविलोकन

यह विदित रहे कि ये चार मन्त्र 'आपोहिष्ठा:' इत्यादि वर के बोलने के हैं। पश्चात् वधू वर वहाँ से उठकर 'तच्चक्षुर्देवहितम्' इस मन्त्र को दोनों बोलकर सूर्य का अवलोकन करें जिसका भाव यह है कि वे सूर्य के समान तेज से युक्त हों और नियमपूर्वक कार्य करने वाले हों।

यदि गृहस्थाश्रम में वे तेजस्वी होकर न रहेंगे तो सन्तान आदि

रक्षा तो दूर रही, अपनी भी रक्षा नहीं कर सकेंगे। जहाँ ऊपर उनको परस्पर सहिष्णु, क्रोधरहित व शान्त रहने का आदेश दिया जा चुका है वहाँ उनको खल पुरुषों के साथ तेजस्वी होकर रहना चाहिये। जहाँ सर्दी की आवश्यकता है वहाँ सर्दी तथा गर्मी की आवश्यकता पर गर्मी होनी चाहिये।

हृदय स्पर्श

अब विवाह की सब क्रिया इस क्रिया के साथ समाप्त होती हैं। वह गठजोड़ा जो किया जा चुका है वही विवाह की पुराने आर्यों की रजिस्ट्री समझिये।

'संस्कारविधि' में लिखा है कि वर, वधू दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ ले जाकर उससे वधू का हृदय स्पर्श करे, और "ओं मम व्रते ते हृदयं धमामि........" यह मन्त्र बोले तथा इसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी उपयुक्त मन्त्र का उच्चारण करे। यहाँ हृदय स्पर्श करने से केवल हृदय की ओर अँगुलि से संकेत करने का ही आशय समझना चाहिये।

सुमङ्गलीकरण या वामाङ्ग स्थिति

वर "सुमङ्गलीरियं वधूः", इत्यादि मन्त्र बोलने के पश्चात् वधू के मस्तक के मध्य सीमान्त देश (मांग) में शलाका (सींक) से सिन्दूर लगावे, पश्चात् आसन परिवर्तन व वामाङ्ग बैठाने का आचार है। इसी को लोकभाषा में पट्टाफेर भी कहते हैं।

विवाहित जीवन में स्त्री की स्थिति

हमें पहिले देख लेना चाहिये कि विवाहित जीवन में प्रवेश करते समय वर और वधू की आयु क्या होनी चाहिये। गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करते हुये वर वधू का एक वार्तालाप ऋग्वेद के १०वें मण्डल के

१८३वें सूत्र में दिया गया है। यहाँ दोनों ओर से एक दूसरे को युवा, युवती और पुत्रकाम व पुत्रकामा सम्बोधित किया गया है। इससे प्रकट होता है कि उन्हीं स्त्री पुरुषों को विवाहित जीवन में प्रवेश करना चाहिये जो जवान हो चुके हों, और जिनमें सन्तानोत्पत्ति की इच्छा होने लगी हो। इसी प्रकार उनके सम्बोधन में प्रयुक्त किये गए पतिकामा, जातिकाम: (अथर्व २।३०।५) आदि विशेषण बताते हैं कि स्त्री और पुरुष का विवाह उस समय होना चाहिए जब उनके अन्दर एक दूसरे के लिए चाह पैदा होनी आरम्भ हो जाय, और यह चाह यौवन में ही स्त्री पुरुष में उत्पन्न होती है।

अथर्ववेद का १४ वां काण्ड और ऋग्वेद के मण्डल १० का ८५ वां सूक्त स्त्री पुरुष के विवाहित जीवन के कर्त्तव्य कर्मों और धर्मों का प्रतिपादन करते हैं। वे कन्या को 'कन्या' या उसके पर्यायवाची शब्दों से स्मरण नहीं करते। वहाँ उसके लिए (सूर्य व सूर्या) शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार वहाँ वर के लिए 'आदित्य' का प्रयोग हुआ है। पुराने शास्त्रों के अनुसार आदित्य वह पुरुष कहलाता है जिसने ४८ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया हो। इसी प्रकार जो बालिका २४ या २५ साल की आयु तक कभी स्वप्न में भी अपने को अपवित्र न करती हुई, अपने शरीर, दिमाग और आत्मा को उन्नत करे उसे 'आदित्या' ब्रह्मचारिणी कहते हैं।

सूर्या आदित्या का ही दूसरा पर्याय है। वर को 'आदित्य' औरवधू को 'सूर्या' अर्थात् आदित्या कहने का अभिप्राय यह है कि वेद की सम्मति में पूर्ण आदर्श विवाह वह है जो आदित्य ब्रह्मचारी और आदित्य ब्रह्मचारिणी में सम्पन्न होता है।

वेदों के अनुसार उन्हीं स्त्री पुरुषों का विवाह हो सकता है जिन्होंने एक दूसरे को भली प्रकार देख लिया है, जान लिया है। ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८३ वें सूक्त में विवाह की इच्छा करने वाली वधू अपने भावी पति से कहती है :—

अपश्य त्वा मनसा चेकितानम्,
तपसो जातं तपसो ऽधिभूतम् ।
इह प्रजामिह रारीं रराणाः
प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामा ॥

हे वर ! मैंने अपने मन से तुम्हें अच्छी प्रकार जान लिया है। तुम ज्ञानी हो, तप का जीवन व्यतीत करके आये हो, और तुम्हें सन्तान की कामना है। आओ ! हम मिलकर सन्तानोत्पत्ति करें। जवाब में वर कहता है :—

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानाम्,
स्वायां तनू ऋत्वे नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा भुवतिर्बभूयाः
प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥

हे वधू ! मैंने तुम्हें अपने मन मे जान लिया है। तुम उच्च गुण वाली युवती हो और मुझे चाह रही हो, तुम्हें सन्तान की कामना भी है। आओ ! हम सन्तानोत्पत्ति करें।

इसी प्रकार अथर्ववेद (३-३०-१) वर वधू अपने को 'एक दूसरे को चाहने वाला' इन शब्दों से याद करते हैं। इसी वेद में यह कहा गया है कि हे वधू ! तुम ऐश्वर्य की नौका पर चढ़ो और पति को 'जिसे तुमने स्वयं पसन्द किया है' संसार सागर के परले पार पहुँचाओ। (अथर्व—२-३६-६) और 'वर वधू को चाहने वाला हो और वधू पति को पसन्द कर रही हो' (अथर्व—१४-१-९)।

साथ ही अथर्ववेद (१४-१-९) में यह भी कहा गया है कि 'मनसा सविता ददात्' अर्थात् कन्या का पिता अपने मन से यानी सारी बातें सोच समझ कर इच्छापूर्वक कन्या को वर के हाथ में देता है। इसी मन्त्र में यह भी कहा गया है कि 'अश्विना स्तामुभात्वरा अर्थात् वर और कन्या के माता-पिता कन्या और वर' को पसन्द करने वाले

बनते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि माता-पिता आदि गुरुजनों की सलाह लेते हुए वर वधू एक दूसरे को अच्छी प्रकार जान और देख-भाल कर परस्पर की अभिरुचि और सहमति से विवाह करें, ऐसा वेद का आदेश है।

जब विवाहित वधू पति के घर में आती है तब उसे वहाँ सम्मानजनक स्थान देते हैं और पति के घर वाले उसके अपने यहाँ आने से गौरव अनुभव करते हैं जैसा कि ये वैदिक उद्धरण सिद्ध करते हैं।

"हे वर यह वधू तुम्हारे कुल की रक्षा करने वाली है।"

(अथर्व—१-१४-३)

"यह वधू पति के घर जाकर रानी बने और वहाँ प्रकाशित हो।"

(अथर्व—२-३६-३)

"यह स्त्री हमारे खिले हुये घर में एक खिली हुई कली है।'

(अथर्व—९-३-२०)

"हे वधू ! तू पति के घर जाकर गृहपत्नी और सबको वश में रखने वाली बन।"

(अथर्व—१४-१-२०)

"हे वधू ! तू श्वसुर, सास, देवर और ननद की साम्राज्ञी और उनमें चमकने वाली बन।"

(अथर्व—१४-१-४४)

"हे पत्नी मैंने सौभाग्य के लिये तेरा हाथ पकड़ा है।"

(अथर्व—१४-१-५०)

मैंने अपनी पत्नी को देख-भाल कर पसन्द कर लिया है, मैं, अपने मित्रों सहित उसका सम्मान करूँगा।"

(अथर्व—१४-१-५६)

ऐसे ही भाव ऋग्वेद के दशवें मण्डल के ८५. सूक्त में भी प्रकट किए गये हैं। पति के घर आने पर वधू की कितनी सम्मानजनक और गौरवमयी स्थिति वेदों में कही गयी है इसकी झलक उक्त मन्त्रों में मिलती है।

संस्कार कितने हैं ?

(कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च)

मनु—२-२६

आर्य समाज या सनातन धर्म में १६ संस्कार ही प्रसिद्ध हैं। किन्तु १६ संस्कारों की संख्या पूर्ति अनेक विद्वान् भिन्न २ प्रकार से करते हैं। सनातन धर्म के मतानुसार निम्नलिखित संस्कार माने गये हैं :—

(१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन (४) जात कर्म (५) नामकरण (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन (८) चूड़ा कर्म (९) उपनयन (१०) महानाम्नी व्रत (११) महाव्रत (१२) उपनिषद् व्रत (१३) गोदान संस्कार (केशान्त) (१४) समावर्तन (१५) विवाह (१६) अन्त्येष्टि। ये १६ संस्कार माने जाते हैं। यह कथन गौतम स्मृति के अनुसार है। आजकल विशेषतया व्यास स्मृति के अनुसार भी १६ संस्कार प्रचलित हैं जिनके नाम निम्नलिखित हैं :—

(१) गर्भाधान (६) निष्क्रमण (११) वेदारम्भ
(२) पुंसवन (७) अन्नप्राशन (१२) केशान्त
(३) सीमन्तोन्नयन (८) चूड़ाकर्म (मुण्डन) (१३) समावर्तन
(४) जातकर्म (९) कर्णवेध (१४) विवाह
(५) नामकरण (१०) यज्ञोपवीत (१५) आवसथ्याधान
(१६) श्रौताधान (त्रैताग्निस्थापन)

पर स्वामी दयानन्द ने वेदारम्भ के बाद—(१२) समावर्तन (१३) विवाह (१४) गृहस्थाश्रम (पञ्चयज्ञ शालाकर्म आदि) (१५) वानप्रस्थ और (१६) संन्यास, यह सोलह संस्कार माने हैं।

कुछ आर्य विद्वान् गृहाश्रम और विवाह को एक मानकर, अन्त्येष्टि को अलग मानकर १६ संस्कारों की पूर्ति करते हैं पर उपनयन वेदारम्भ को एक न मानकर १६ संस्कारों की पूर्ति करने वाला विचार सही है।

कुछ आचार्य कर्णवेध को संस्कारों में नहीं मानते हैं। संस्कारों के फल के विषय में मनु जी लिखते हैं कि :—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैः, त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

अर्थात् स्वाध्याय तथा हवनादि के द्वारा यह शरीर ब्राह्मण पद को पा लेता है।

सोलह संस्कार कौन कौन से हैं ?

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।

मनु० अ० २। श्लोक १६॥

इस श्लोक से यह निश्चय होता है कि पहला संस्कार गर्भाधान और अन्तिम अन्त्येष्टि है।

मनुस्मृति में संस्कारों का जो वर्णन है वह इस प्रकार है :—

मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २६ से २८ तक गर्भाधान = १

" " २ " २९ से ३३ तक जातकर्म २,
नामकरण ३

" " २ " ३४ से ३५ तक निष्क्रमण ४,
अन्नप्राशन ५, चूड़ाकर्म ६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"	"	२	"	३६ से ४०	उपनययन ७
"	"	४	"	९५	
"	"	२	"	६५	केशान्त ८
"	"	२	"	१०७ से १०८	समावर्तन ९
"	"	३	"	१–४	विवाह १०
"	"	४	"	१	
मनुस्मृति	अध्याय		श्लोक	१ से २५७ तक)	
"	"	६	"	१)	
"	"	६	"	३३	संन्यास १२
"	"	२	"	५६	अन्त्येष्टि १३

उपर्युक्त संस्कारों की गणना करने से पता लगता है कि मनुस्मृति में १३ संस्कार वर्णन किये गये हैं।

जिसको महर्षि मनु ने केशान्त संस्कार का नाम दिया है वह वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत आ जाता है। यह बात कि केशान्त संस्कार वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत है गोभिल गृह्यसूत्र, प्रपाठक ३ कण्डिका १ के पठन से निश्चय होती है। गोभिल गृह्यसूत्र में इसी संस्कार को उपनयन के पीछे वर्णन किया है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के पढ़ने से निम्नलिखित ग्यारह संस्कारों का वर्णन हम उसमें पाते हैं।

(१) विवाह (४) सीमन्तोन्नयन (७) चूड़ाकर्म (१०) समावर्तन
(२) गर्भालंभन (५) जातकर्म (८) अन्नप्राशन (११) अन्त्येष्टि।
(३) पुंसवन (६) नामकरण (९) उपनयन

आश्वलायन गृह्यसूत्र में वेदारम्भ, निष्क्रमण, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार संस्कारों का वर्णन नहीं किया गया है। यदि ये चार संस्कार जिनका मनुस्मृति में वर्णन है वे ग्यारह में जोड़ दिये जाँय तो संस्कारों की गणना पन्द्रह हो जाती है।

पुंसवन और सीमन्तोन्नयन इन दो संस्कारों का वर्णन उक्त आश्वलायन गृह्यसूत्र में है। यदि मनु में यह दो संस्कार और जोड़ दिये जावें तो सस्कारों की गणना पन्द्रह ठहरती है।

पारस्कर गृह्य सूत्र के पाठ से निम्नस्थ बारह संस्कारों का पता मिलता है :—

१. विवाह	२. गर्भाधान	३. पुंसवन	४. सीमन्तोन्नयन
५. जातकर्म	६. नामकरण	७. निष्क्रमण	८. अन्नप्राशन
९. चूड़ाकर्म	१०. उपनयन	११. केशांत	१२. समावर्तन।

आश्वलायन में जो वेदारम्भ और निष्क्रमण संस्कारों का वर्णन नहीं था वह इस पारस्कर में है किन्तु वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि इन तीन संस्कारों का इसमें वर्णन नहीं है। यदि ये तीन संस्कार इसमें जोड़ दिये जाँय तो संस्कारों की गणना पन्द्रह हो जावेगी।

मनुष्य गणना—बाबत सन् १९०१ खण्ड १८। अध्याय ३ पृष्ठ १३१ पर लिखा है कि सोलह संस्कारों में से निम्नलिखित हिन्दू लोगों में प्रचलित हैं।

१. गर्भाधान	२. पुंसवन	३. सीमन्तोन्नयन
४. जातकर्म	५. नामकरण	६. सूर्यावलोकन
७. अन्नप्राशन	८. चूड़ाकर्म	९. उपनयन
१०. समावर्तन	११. विवाह	१२. अन्त्येष्टि।

यदि इनमें वेदारम्भ वानप्रस्थ और संन्यास और कर्णवेध की गणना करें तो १६ संस्कार होते हैं :—

भिन्न भिन्न पूर्वोक्त ग्रन्थों के दर्शाये हुए संस्कारों की गणना मिला कर करने से हमें १५ संस्कारों के नाम तथा उनका वर्णन मिलता है। अब एक संस्कार जिसका नाम 'संस्कार विधि' में कर्णवेध दिया गया है उसका वर्णन कहाँ मिलता है इस पर विचार करने पर हम १६

संस्कारों की गणना पूरी कर सकेंगे। सुश्रुत, सूत्रस्थान अध्याय १६ सूत्र १ में निम्नलिखित वचन आता है जिससे प्रतीत होता है कि कर्ण-वेध संस्कार भी होता था। वह वचन यह है।

रक्षाभूषण निमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येते।
षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे प्रशस्तेषु दिनेषु॥

कात्यायन गृह्यसूत्र में कर्णवेध संस्कार के वर्णन का विधान है। इतना लिखना पर्याप्त है कि कर्णवेध संस्कार का विधान सुश्रुत में होने से निश्चय होता है कि सोलहवाँ संस्कार कर्णवेध ही हो सकता है।

'संस्कार विधि' में 'गृहाश्रम' को एक संस्कार और अन्त्येष्टि संस्कार को अन्त्येष्टि कर्म लिखा गया है। संस्कार विधि के गर्भाधान संस्कार के अन्तर्गत मनु का यह वाक्य सबसे पहिले दिया गया है कि—

निषेकादिश्मशानान्तः... ...

और इसकी व्याख्या में यह लिखा है कि 'गर्भाधान से लेकर श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं। शरीर का अन्त भस्म कर देने तक १६ प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं।'

फिर अन्त्येष्टि कर्म विधि के विषय में यह लिखा है कि—

'अन्त्येष्टि कर्म उसको कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिसके आगे उस शरीर के लिए कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध, पुरुषमेध, या नरयाग भी कहते हैं।'

इत्यादि वचनों को पढ़ने या विचार करने से प्रतीत होता है कि महर्षि दयानन्द जी अन्त्येष्टि कर्म को अन्त्येष्टि संस्कार लिख रहे हैं। इससे सिद्ध हुआ कि संस्कारविधि में 'गृहाश्रम संस्कार' को संस्कारों की गणन से हटा कर अन्त्येष्टि कर्म को संस्कारों में प्रविष्ट करना चाहिए।

क गृहाश्रम कर्म के स्थान में गृहाश्रम संस्कार का

शब्द शीर्षक क्यों लिखा गया। हमारे विचार में किसी संशोधक की सहज दृष्टि के कारण।

इसके अतिरिक्त जो गृहाश्रम संस्कार के नाम से लेख 'संस्कार विधि' में है वह संस्कार के रूप में नहीं यह और भी प्रबल युक्ति है। इसलिए संस्कार विधि से किसी संस्कार को उड़ाने वा कम करने की आवश्यकता नहीं, केवल गृहाश्रम संस्कार के स्थान में गृहाश्रम कर्म और अन्त्येष्टि कर्मविधि के स्थान में 'अन्त्येष्टि संस्कार' यह शब्द लिखने की जरूरत है। सूत्रग्रन्थों में अन्त्येष्टि को संस्कार मनु के समान माना है और यह हो नहीं सकता कि महर्षि दयानन्द की संस्कार विधि उसको संस्कारों में न गिने। यदि गिना जायगा तो गृहाश्रम संस्कार गृहाश्रम कर्म के रूप में विवाह के अन्तर्गत हो जावेगा। जैसा कि कई सूत्र ग्रन्थों में भी विवाह के अन्तर्गत है। अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि संस्कार विधि में जो १६ संस्कार संस्कार के रूप में लिखे गये हैं उनका वर्णन सूत्र ग्रन्थों, मनु तथा सुश्रुत ग्रन्थ में मिलता है।

१. गर्भाधान	२. पुंसवन	३. सीमन्तोन्नयन	४. जातकर्म
५. नामकरण	६. निष्क्रमण	७. अन्नप्राशन	८. चूड़ाकर्म
९. कर्णवेध	१०. उपनयन	११. वेदारम्भ	१२. समावर्तन
१३. विवाह	१४. वानप्रस्थ	१५. संन्यास	१६. अन्येष्टि

कई लोग कहते हैं कि शूद्रों के षोड़श संस्कार नहीं करने चाहिए। यह उनकी भूल है। जब शूद्र विवाह और सन्तानोत्पत्ति की योग्यता वा चेष्टा बराबर रखते हैं तो फिर उनको संस्कार जो मर्यादा पूर्वक उत्तम बनाने की क्रिया है उसके करने से रोकना सृष्टि नियम के विरुद्ध है। न केवल यही किन्तु वे सब संस्कारों को द्विजों के समान कर सकते हैं। इसलिए यह कथन सर्वथा ठीक नहीं है कि शूद्र संस्कारों के अधिकारी नहीं। यदि गिलोय राजा का विष हरती है तो शूद्र के लिए वह कभी विष न हरने वाली नहीं हो सकती।

गोदान संस्कार

सनातन धर्म विधियों में गोदान संस्कार भी पाया जाता है जिसमें विवाह से पूर्व और उपनयन से पूर्व जो शुभ कर्म किये हैं उनकी प्रतिष्ठा या स्थिरता के लिए तथा ब्रह्मचर्य काल में यदि कोई जटी ब्रह्मचारी हो तो उसके शरीर गत काठिन्य की निवृत्ति के लिये केश-निर्वापन और उपलेपन आदि किये जाते हैं—महाकवि कालिदास ने इस संस्कार को बहुत महत्व दिया है और रघु के विवाह से पूर्व इस संस्कार का होना लिखा है—वे लिखते हैं कि :—

अथास्य गोदान विधेरनन्तरं,
विवाह दीक्षां निरवर्तयद् गुरुः ।

इससे इस संस्कार की लोकाचार परम्परा प्रकट होती है तथा इस संस्कार में भगवत् पूजन अर्थात् यज्ञ आदि के बाद—

ॐ गावो मे अग्रतः सन्तुः गावो में सन्तु पृष्ठतः
गावः शिरसि में नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।

यह मन्त्र पढ़ कर गौओं की प्रदक्षिणा करे तथा निम्नलिखित मंत्र का पाठ करे :—

ॐ इरावती धेनुमतीहि भूतढ्सूयवसीनिमनवेद शस्या,
व्यस्क्कभ्नाद् रोदसीव्विष्णवेतेदाधर्थपृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ।

तदनन्तर गौ का दोहन करे और निम्नलिखित पद्यों को पढ़ता चले ।

ओं नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो ब्रह्म सुता भ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।।

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
पश्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ ।।

ता सां मध्ये तुयानन्दा तस्यै देव्यै नभो नमः ।
गावो मे पार्श्वयोः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

गवामंगेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।
यस्मात्त स्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ॥

तदनन्तर यह भावना करे कि मेरे सब प्रकार के पापों का निर्हरण हो रहा है और उसी गाय को

ओं यज्ञ साधन भूता या विश्वस्यघौघ नाशिनी
विश्व रूप धरो देवः प्रीयतांस तया गवा ।

इस मन्त्र को कह कर किसी ब्राह्मण को दान दे दे । और परमात्मा से यह प्रार्थना करे कि मुझको गोदान करने की शक्ति सर्वदा प्राप्त होती रहे । इसी भावना से निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करता रहे ।—

ओं गावो मामुपतिष्ठन्तु हेम शृङ्ग्यः पयोमुचः ।
सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा ॥

गावैः पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा ।
गावैः पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मा सदा ।

गावो ऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ॥
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ।

अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्
पावनं सर्वभूतानां ईप्सन्ति च वहन्ति च ।

हविषा मन्त्र रूपेख तर्पयन्त्य मरान् दिवि
ऋषीणामपि भूतानां गावो होमे प्रतिष्ठिताः ।

सर्वेयामेव भूतानां गावः शरण मुत्तमम्
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावोः धन्याः सवाहनाः ॥

समीक्षा :—

इस गोदान विधि के देखने से यह प्रतीत होता है कि ब्रह्मचारी नें ब्रह्मचर्य अवस्था में जिन गौओं का दुग्ध पान किया था उसको वह आज के दिन छोड़ देना चाहता है। प्राचीन ऋषि शिष्यों की परीक्षा एक गौ के हजार बछड़े बनवा कर किया करते थे, यही भाव इस गोदान विधि के अन्तस्तल में निहित है। गोपुच्छ से तर्पणादि करके गौ का केवल माहात्म्य प्रदर्शित किया है वह माहात्म्य केवल गौ की पूँछ को पकड़ने मात्र से नहीं होता बल्कि राजा दिलीप के समान एक वर्ष तक गौ की निरन्तर सेवा करने से होता है।

अथ
विवाह संस्कार विधिः

अथ ऋत्विग्वरणम् ।

यजमानोक्तिः । [अर्थ] यजमान कहता है

ओमावसोः सदने सीद । अर्थः [वसोः] अग्नि वा यज्ञ के [सदने] स्थान में [आसीद] बैठिये ।

इस वाक्य का उच्चारण करके ऋत्वज् को कार्य कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे ।

ऋत्विगुक्तिः [अर्थ] ऋत्विक् कहता है ।

ओ३म् सीदामि । [अर्थ] बैठता हूँ ।

ऐसा कह कर जो उसके लिए आसन बिछाया हो उस पर वह बैठे ।

यजमानोक्तिः । [अर्थ] यजमान कहता है ।

अहमद्योक्त कर्म करणाय भवन्तं वृणे । [अर्थ] मैं आज कहे हुए संकल्पित काम को करने के लिये आपको स्वीकार करता हूँ ।

ऋत्विगुक्तिः [अर्थ] पुरोहित कहता है ।

वृतोस्मि । [अर्थ] मैं स्वीकार करता हूँ ।

ऋत्विग् वरण करते समय यजमान ऋत्विजों के हाथ में—कलावा (सूत्र) बांधते हुए 'ओं भूर्भुवः स्वः' इस गायत्री मन्त्र को पढ़े ।

आसन—व्यवस्था

दक्षिणतो ब्रह्मा सनमास्तीर्येति । पार० गृ० सू० १ । का० २ ।

क० परिशिष्ट पदार्थक्रमे। और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कार पूर्वक आसन पर विठावे, और वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर वैठें और उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म या दूसरी बात कोई भी न करे और अपने अपने जलपात्र से सब जन जो कि यज्ञ करने को बैठे होंवे, इन मन्त्रों से तीन तीन आचमन करे। अर्थात् एक एक मन्त्र से एक २ बार आचमन करें। वे मन्त्र ये हैं :—

आचमन

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ इससे एक

अर्थ :— हे (अमृत) सुखप्रद जल* ! तू (उपस्तरणम्) प्राणियों का आश्रयभूत (असि) है (स्वाहा) यह हमारा कथन शोभन हो।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरा

अर्थ :— (अमृत) तू (अपिधानम्) निश्चय पोषक (असि) हो

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

(मानव गृह्य सूत्र प्रथम पुरुष ९वाँ खण्ड) इससे तीसरा आचमन करे।

अर्थ :— (मयि) मुझमें (सत्यम्) सचाई (यशः) कीर्ति (श्रीः) शोभा (श्रीः) लक्ष्मी (श्रयताम्) स्थित हो (ओ३म्) परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है। व्याकरण से इसका रक्षकादि, अर्थ होता है। इसके पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों द्वारा जल से अंगों का स्पर्श करे।

---

*यह प्रयोग-शैली जैसा कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में निरुक्त के प्रमाण से दरशाई गई है कोई जड़ से वार्ता वा उसकी उपासना करने के लिये नहीं, किन्तु उसके उपयोग विशेष से है।

अङ्ग-स्पर्श

ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु ।। (पार० गृ० कां० १ । क० ३ । सू० २५) इस मन्त्र से मुख ।

अर्थ :— (मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) वागिन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो ।

ओ३म् नसो र्मे प्राणोऽस्तु ।। इस मन्त्र से नासिकाओं के दोनों छिद्र

अर्थ :— (मे) मेरे (नसो:) दोनों नासिका-छिद्रों में (प्राण:) प्राणवायु वा प्राणेन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो ।

ओ३म् अक्ष्णोर्मेचक्षुरस्तु । इस मन्त्र से दोनों आँखें ।

अर्थ :— (मे) मेरे (अक्ष्णो:) नेत्र-गोलकों में (चक्षु:) चक्षुरिन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो ।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।। इस मन्त्र से दोनों कान ।

अर्थ :— (मे) मेरे (कर्णयो:) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो ।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु । इस मन्त्र से दोनों बाहु ।

अर्थ :— (मे) मेरे (बाहो:) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल शक्ति (अस्तु) हो ।

ओ३म् ऊर्वो र्मे ओजोऽस्तु ।। इस मन्त्र से दोनों जंघाओं का स्पर्श करे ।

विवाह समय

जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो इस रात्रि से तीन दिन पूर्व विवाह करने के लिए प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिए और यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य, सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है ।

पश्चात् एक घण्टे मात्र रात्रि † जाने पर ।*

इन तीन मन्त्रों को बोल कर तथा उनका आशय समझ, वर वधू स्वगृह पर स्नान करें ।

ओं काम वेद ते नाम मदो नामासि समानयामुं सुरा ते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० ख० १ । मं० १ ।

अर्थ :— हे (काम) काम ! (ते, नाम) तेरे नाम को (वेद) सब जगत् जानता है (मदः नाम, असि) तू मदकारी प्रसिद्ध है । (ते) तेरे लिए यह कन्या (सुरा) मद साधन (अभवत्) हो चुकी है अथवा (सुरा) यह जल तेरे शान्त्यर्थ उपस्थित है (सुरा जल का नाम भी है) (अमुम्) इस कन्या को वा इस मद को वा इस पति को (समानय) मानसहित कर । हे (अग्ने) कामाग्ने ! (अत्र) इस स्त्री जाति में ही तेरे (परं जन्म) उत्कृष्ट जन्म हैं । (तपसः) गृहस्थाश्रम पालन रूप उत्कृष्ट धर्म के लिये तू (निर्मितः) ईश्वर ने बनाया (असि) है ।

ओं इमं ते उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् । तेन पुंसोऽभि भवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञी स्वाहा ॥

(सा० मं० ब्रा० प्र० १ । खं० १ । मं० २)

अर्थ :— हे वधू ! (इमं ते उपस्थम्) इस तेरे आनन्द जनक इन्द्रिय की (मधुना) प्रेम से (सं, सृजामि) संसृष्ट करता हूँ । एतत् यह (प्रजापतेः) गृहस्थी बनने का (द्वितीय मुखम्) द्वितीय द्वार है ।

---

† यदि आधी रात तक विधि न पूरी हो सके मध्यान्होत्तर आरम्भ कर देवे जिससे मध्य रात्रि तक विवाह विधि पूरी हो जावे ।

*—इस वाक्य का मूल आधार गृह्यसूत्रों में नहीं मिलता ?

(तेन) उससे ही (अवशान्) नहीं किसी के वश में होने वाले भी (सर्वान् पुंसः) सब पुरुषों को (अभि-भवासि) वशीभूत कर लेती है और (वशिनी) वश करने वाली तू (राज्ञी) घर की स्वामिनी (असि) है।

ओं अग्नि क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणा मुपस्थ मृषयः पुराणाः। तेनाज्यमकृण्वं स्त्रैश्रृंङ्ग त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥

(सा० मं० ब्रा० प्र० १। खं० १। मं० ३॥)

अर्थ :— (गुहानाः) तत्वदर्शी (पुराणाः) पुराने (ऋषयः) ऋषि लोगों ने (स्त्रीणाम्) स्त्री जाति के (उपस्थम्) आनन्द जनक इन्द्रिय को (क्रव्यादम्) मांस खाने वाला (अग्निम्) आग जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है। (तेन) उसके साथ (त्रैशृङ्गम्) पुरुष शिश्न से उत्पन्न (त्वाष्ट्रम्) उत्पादक शक्ति बलि वीर्य को (आज्यम्) घृत घी जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है। हे वधू! (त्वयि) तेरे में (तत्) वह शुक्र (दधातु) पुष्ट हो।

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को ले के वधू-वर स्नान करें। पश्चात् उत्तम वस्त्रालंकार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ कर वधू वर निम्न लिखित मन्त्रों से ईश्वर प्रार्थना आदि करें।†

---

† स्नाम विधि गोभिल गृ० सू० ए० २ का० १ सू० १० के अनुसार हो विशेष बही द्रष्टव्य है।

यह यज्ञ वधू और वर पृथक् २ अपने घर पर करें। पर प्रायः घर यज्ञ नहीं होता अतः मण्डप में ही वर वधू दोनों मिल कर करें।

अथेश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद भद्रन्तन्न आसुव ॥१॥

(यज० अ० ३०। मं० ३ ॥)

अर्थ :— हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (परा-सुव) दूर कर दीजिए (यत्) जो (भद्रम्) कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह सब हमको (आ, सुव) प्राप्त करा दीजिए ॥१॥

'ओं हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथ्वी द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

(य० अ० १३। मं० ४ ॥)

अर्थ :— जो (हिरण्यगर्भः) स्व प्रकोशमय और जिसने प्रकाश करने वाले सूर्य चन्द्रादि का पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन रूप (आसीत्) था। जो (अग्रे) सब जगत के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तन) वर्तमान था (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है। हम लोग उस ब्रह्म स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥२॥

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥
(यजु० अ० २५ । मं० १३ ॥)

अर्थ :— (यः) जो (आत्मदा) आत्म ज्ञान का दाता (वलदा) आत्मा और समाज के वल का देनेहारा (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासने) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रार्शषम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं । (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने वाले परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तः करण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
(यजु० अ० २३ । मं० ३ ॥)

(यः) जो (प्राणतः) प्राणि वाले और (निमिषतः) अप्राणि रूप (जगतः) जगत का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एकः इत) एक ही (राजा) विराजमान राजा (वभूव) है (यः) जो (अस्म) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है हम उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकलै श्वर्य के देने वाले परमात्मा के लिए (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ।

ओं येनद्यौरुग्रा प्रथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥५॥
(यजु० अ० ३२ । मं० ६)

अर्थ :— (येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढ़ा) धारण (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेषमान युक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण करता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ।।४।।

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा.जातानि परिता वभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।६।।
(ऋ० मं० १० । सू० १२१ । म० १० ।।

अर्थ :— हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (वस्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परिवभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना करने वाले हम लोग (ते) आपका (जहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस २ की कामना (नः) हमारी सिद्धि (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीवाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) पतयः स्वामी (स्याम) होवें ।

ओं स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।७।।
(य० अ० ३२ । मं० १० ।।

अर्थ :— हे मनुष्यों (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (वन्धुः) भ्राता के समान सुख दायक (जनिता) सकल जगत का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों से पूर्ण करने वाला (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम स्थान,

जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करने वाले परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ।।७।।

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् धिश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ।।८।।
(य० अ० ४० । मं० १६ ।।

अर्थ :— हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने वाले (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों की (रपि) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और अस्मत् हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पाप रूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये । इस कारण हमलोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) वहुत प्रकार की स्तुति रूप (नम, उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ।

।। इतीश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना प्रकरणम् ।।

——:o:——

❀ अथ स्वस्तिवाचनम्

ओं अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।१।।

ऋ० मं० १। सू०। मं० १।।

(पुरोहितम्) पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले (यज्ञस्य) हवन विद्यादि दान और शिल्प क्रिया के (देवम्) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारम्) जगत् के सुन्दर पदार्थों को देने वाले (रत्नधातमम्) रमणीय रत्नादिकों के पोषण करने वाले (अग्निम्) प्रकाश स्वरूप परमातमा की (ईडे) मैं उपासक स्तुति करता हूँ भौतिक अग्नि पर कभी इस मन्त्र का अर्थ होता है पर यहाँ यही ग्राह्य है।

ओं स नः पितेव सूनवे ऽग्नेसूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ।।२।।

ऋ० मं० १ सूत्र १ मं० ९

(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर। (सः) लोक देव प्रसिद्ध आप (सूनवे पिताइव) पुत्र के लिये पिता जैसे (नः) हमारे लिए (सूपायनो भव) सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले बनिये। और (नः) हम लोगों का (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सचस्व) मेल कराइये।

---

* अथ स्वस्तिवाचनम्—ऋद्धि पूर्तेषु स्वस्त्ययनं वाचयेदित्या चार्यः। ऋद्धिविनाहान्ता आपत्य संस्कारः, प्रतिष्ठोद्यापने पूर्तमिति आश्वलायन गृ.सू. परिशिष्टे। अथ स्वस्त्ययनं मातन्वीत इत्याश्वलायनः।।१-८-१५।।

ओं स्वस्तिनो मिमीता मश्विना भगः
स्वस्ति देव्य दितिर नवर्णः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः
स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ॥३॥
(ऋ० मं० ५ । सू० ५१ मंत्र ११)

हे ईश्वर (आश्विना) अध्यापक और उपदेशक (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (भिमीताम्) करें (भगः) ऐश्वर्यरूप आप वायु (स्वस्ति) सुख का संपादन करे (अदितिः) अखण्डित (देवी) प्रकाश वाली विद्युत् विद्या (अनर्वणः) ऐश्वर्य रहित हम लोगों के लिये कल्याण करें। (पूषा) पुष्टि कारक (असुरः) प्राणों का देने वाला मेघादि (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) देवे। (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथ्वी (सुचेतुना) अच्छे विज्ञान से युक्त हुए (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण कारी हो।

ओं स्वस्तये वायु मुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्यतिः ।
वृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नाः ॥४॥

हे परमेश्वर ! (स्वस्तये) शान्ति के लिए हम (वायुम्) वायु विद्या को (उप ब्रवाम है) कहें या उपदेश करें और (सोमम्) शान्त्यादि ऐश्वर्य देने वाले चन्द्रथा की भी हम स्तुति करते हैं (या) जो चन्द्रमा ओषध्यादि रस का उत्पादक होने से (भुवनस्य) संसार की (पतिः) रक्षा करने बाला है। (वृहस्पति) बड़े कर्मों के रक्षक (सर्वगणम्) सम्पूर्ण समूह वाले आपका (स्वस्तये) कल्याण के लिये आश्रयण करदे हैं। (आदित्यासः) ४८ वर्ष पर्यन्त व्रह्मचर्य को धारण करने वाले व्रह्मचारी आपकी कृपा से (नः) हम लोगों के बीच (स्वन्तये भवन्तु) कल्याणार्थ उत्पन्न हो।

ओं विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वं हसः ॥५॥

(ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मंत्र १३ ॥)

हे परमात्मन् ! (अद्य) आज (नः) हमारे (स्वस्तये) आनन्द के लिए (विश्वेदेवाः) सदा विद्वान् लोग हों। और (वैश्वानरः) सब मनुष्यों के काम में आने वाला और सर्वत्र वसने वाला (अग्निः) अग्नि (स्वस्तये) मङ्गल के लिये (ऋभवः) विशिष्ट मेधावी (देवः) विद्वान् लोग (अवन्तु) हमारी रक्षा करें और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये हो (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाले आप (अंहसः) पाप रूप अपराध से (स्वस्तिपातु) शान्तिपूर्वक हमारी रक्षा करो ॥

ओं स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

(ऋ० मं० ५ सू० ५१ मं० १४॥)

हे (अदिते !) अखण्डित विद्य ! परमेश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण करे (पथ्ये रेवति) शुभ धनादि सम्पन्न मार्ग में हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण हो। और (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण कारी हों।

ओं स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्यांचन्द्र मसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥७॥

ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १५ ।

हम लोग (सूर्य्याचन्द्रमसाविव) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश (स्वस्ति) सुख (पन्थाम्) मार्ग के (अनुचरेम्) अनुगामी हों और (पुनः) फिर (ददता) दान करने (अघ्नता) और नहीं नाश करने वाले (जानता) विद्वान् के साथ (संगमेमहि) मिलें ॥७॥

ओं ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगाय मद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।८।।

ऋ० मं० ७ सू० ३५ । मं० १५ ।।

(ये) जो (यज्ञियानां, देवानाम्) यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में (यज्ञियाः) यज्ञोपयोगी हैं और (मनोर्यजवाः) मननशील पुरुषों के साथ संगति करने वाले (अमृताः) जीवन्मुक्त जैसे (ऋतज्ञाः) सत्यज्ञानी हैं (ते) वे आप लोग (अद्य) आज (उरुगायम्) बहुत कीर्ति वाले विद्या बोध को (नः) हमारे लिए (रासन्ताम्) देवें और (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी पदार्थों से (सदा) सब काल में (नः) हमारी (पात) रक्षा किया करो ।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रि वर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ।।९।।
ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ३ ।।

(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए (माता) सब का निर्माण करने वासी पृथ्वी (मधुमत्, पयः) माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थों को (पिवन्ते) देती हैं और (अदितिः) अखण्डनीय (अद्रि वहीः) मेघों से बढ़ा हुआ (द्यौः) अन्तरिक्ष लोक (पीयूषम्) सुन्दर जलादि को देता है ; उन (अक्थ शुष्मान्) अत्यन्त बलवाले (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने वाले (स्वप्नसः) शोभन कर्म वाले (तान् आदित्यान्) उन आदित्य ब्रह्मचारियों को (स्बस्तये) उपद्रव न होने के लिए (अनुमदा) प्राप्त कराइए ।।९।।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं बसते स्वस्तये ।।१०।।
ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ४ ।।

(नृचक्षसः) कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा (अनिमिषन्तः) आलस्य

रहित (अर्हणः) लोगों के पूजनीय (देवासः) विद्वान् लोग हैं जो कि (वृहत्) बड़े (अमृतत्वम्) अमरण धर्म को (आनशुः) प्राप्त हो चुके हैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं और (ज्योतीरथाः) सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं (अह्रिमायाः) जिनकी बुद्धि कोई दबा नहीं सकता ऐसे (अनागसः) पाप रहित वे आदित्य ब्रह्मचारी जो कि (दिवः) अन्तरिक्ष लोक के (वष्मणिम्) ऊँचे देश को (वसते) ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं वे (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिए हों ॥१०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभि र्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये।११।

ऋ० मं० १० । सू०६३ मंत्र ६ ॥

(सम्राजः) अपने तेजों से अच्छे प्रकार विराजमान (सुवृधः) ज्ञानादि से वृद्ध (ये देवाः) जो विद्वान् लोग (यज्ञम्) यज्ञ को (आयशुः) प्राप्त होते हैं और जो (अपरिह्वृत्ताः) किसी से भी पीड़ित देवता लोग (दिवि) द्युलोकवर्ती वड़े २ स्थानों में (क्षयम्) निवास को (दधिरे) करते हैं (तान्) उन (महो आदित्यान्) गुणों से अधिक आदित्य ब्रह्मचारियों को और (अदितिम्) अखण्डनीय आत्म विद्या को (नमसा) हव्यान्न के साथ (सुवृक्तिभिः) अच्छी स्तुतियों के साथ (स्वस्तये) कल्याण के लिए (आ, विवास) सेवन कराओ ॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्योनः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ६ ॥

ईश्वर का उपदेश है :— हे (विश्वे, देवासः) समस्त विद्वानो ! (यं जुजोषथ) जिस स्तुति समूह को तुम सेवन करते हो उस (स्तोमम्) सामवेदोक्त स्तुति ससूह को (वः) तुम लोगों के बीच में (कः) कौन राधति (बनता है) और हे (तुविजाताः) अनेक प्रकार के जन्म वाले

(मनुषः) मननशील विद्वान् लोगों (यतिस्थन) जितने तुम हो उन (वः) तुम सब के बीच में (कः) कौन (अध्वरम्) यज्ञ को (अर करत्) अलंकृत करता है ? (यः) जो यज्ञ (नः) हमारे (अलः) पाप को (अति) हटा कर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (पर्षत्) पालन करता है (इसका विचार करो) ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमा मायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥

ऋ० मं० ११ । सू० ६३ मं० ७ ॥

(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए (समिद्धाग्निः) अग्निहोत्री (मनुः) मननशील विद्वान् (मनसा) मन से (सप्तहोतृभिः) सात होताओं से (प्रथमाम्) मुख्य (होत्राम्) यज्ञ को (आयेजे) करता है अर्थात् जिनके लिए विद्वान् लोग बड़े२ यज्ञों द्वारा सम्मान करते हैं (ते, आदित्याः) वे आदित्य (स्वस्तये) कल्याण के लिए (सुगा) अच्छे प्रकार प्राप्तव्य (सुपथा) शोभन वैदिक मार्गों को (कर्त) करें ॥१३॥

य ईशरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्यादेवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

ऋ० मं० १० सू० ६ । मं० ८ ॥

(ये देवासः) जो विद्वान् लोग (प्रचेतसः) अच्छे ज्ञान वाले (मन्तवः) सब के जानने वाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जङ्गम (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोक के (ईशरे) मालिक बनते हैं (ते) वे (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिए (कृतात्) किए हुए (अकृतात्) नहीं किए हुए (एनसः) पाप से (परि, पिपृत) पार करें ।

भरेऽष्विन्द्रं सुहवं हवामहें ऽहोमुचंसुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्नि मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा पृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥
ऋ० मं० १०।सू० ६३ । मं० ९॥

हे ईश्वर ! (अहोमुचम्) पाप के हटाने वाले (सुहवम्) जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे (इन्द्रम्) शक्तिशाली विद्वान् को (भरेषु) संग्रामों में (हवामहे) अपनी रक्षा के लिए बुलावें और (सुकृताम्) श्रेष्ठ कर्म वाले (दैव्यम्) आस्तिक (जनम्) पुरुष को बुलावें और (सातये) अन्नादि लाभ के लिये (स्वस्तये) अनुपद्रव के लिए (अग्निम्) अग्नि विद्या को (मित्रम्) प्राण विद्या को (भगं वरुणम्) सेवनीय जल विद्या को और (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी की विद्या को (मरुतः) वायु विद्या को हम सेवन करें ॥१५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनाग समस्रवन्ती मारुहेमा स्वस्तये ॥१६॥
ऋ० मं० १० । सू ६३ । मं० १० ।

(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाली (पृथिवीम्) लम्बी-चौड़ी (अनेहसम्) उपद्रव रहित (सुशर्माणम्) अच्छा सुख देने वाली (अदितिम्) जो टूट न सके (सुप्रणीतिम्) जो अच्छे प्रकार बनाई गई है (द्याम्) अन्तरिक्षलोकस्थ (स्वरिभाम्) सुन्दर यन्त्रों से युक्त (असूवन्तीम्) दृढ़ (दैवीम्)नामम्) विद्युत्सम्वन्धी नौका अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिए (आरु हेम) चढ़ें ॥१६॥

विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम श्रृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥
ऋ० मं० १० । सू० ६३।मं० ११॥

हे (विश्वे यजत्रा) पूजनीय विद्वानो ! (अतये) हमारी रक्षा के

लिए अविवोचत्) आप उपदेश किया करें और (अभिह्रुतः) पीड़ा देने वाली (दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमारी (त्रायध्वम्) रक्षा करो (देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (शृण्वतः) हमारी स्तुति से सुनने वाले आपको (सत्यया) सच्ची (वः) तुम्हारी (देवहूत्या) देवताओं के योग्य स्तुति हम (अवसे) शत्रुओं से रक्षा करने के लिए और (स्वस्तये) सुख के लिए (हुवेम) बुलाया करें ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ११ ॥

हे (देवाः) विद्वान् लोगो (अमीवाम्) रोगादिको (अप) पृथक् करो । (विश्वाम्) सब (अनाहुतिम्) मनुष्यों की यज्ञ न करने की बुद्धि को (अप) पृथक् करो । (अरातिम्) लोभ बुद्धि को (अप्) पृथक् करो (अघायतः) पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की (दुर्विदत्राम्) दुष्ट बुद्धि को दूर करो । (द्वेषः) द्वेष करने वाले सबों को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (युयोतन) पृथक् करो ।(नः) हमारे लिए (उरुशर्म) बहुत सुख (स्वस्तये) कल्याण के लिए (यच्छत) देओ ॥१८॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्रप्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० १३ ॥

हे (आदित्यासः) आदित्य ब्रह्मचारियों (यम्) जिन पुरुषों को (सुनीतिभिः) अच्छी नीतियों से (विश्वानि दुरिता) सब पापों को (अति) लङ्घन करके (नयथ) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः विश्वः मर्तः) वे सब पुरुष (अरिष्टः) धर्मानुष्ठान के (परि) अनन्तर (प्रजाभिः) पुत्र पौत्रादिकों से (प्रजायते) अच्छी तरह प्रकट होते हैं ।

यं देवासोऽवथ बाज सातौ यं शूरसाता मरुतो हि ते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सा नसिमरिष्यन्त मारुहे मा स्वस्तये ॥२०॥

हे (मरुतो देवास्थ) मितभाषी देवता विद्वान् लोगो ! (वाजसातौ) अन्न के लाभ के लिए (यं, रथम्) जिस रमणीय साधन वाष्पयानादि की (अवथ) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो और (हिते धने) रक्खे हुए धन के कारण (शूरसाता) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो (इन्द्रसानसिम्) बड़े यंत्रकला के विद्वानों से भी सेवनीय (प्रातर्यावाणम्) प्रातः काल से ही गमन करने वाले उसी (अरिष्यन्तम्) वेखटके (आरुहेम) चढ़े ।

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्तिनः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० १५॥

(मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोगों (नः) हमारे लिए (पथ्यासु) मार्ग के योग्य अर्थात् जल सहित देशों में (स्वस्ति) कल्याण करो और (धन्वसु) जल सहित देशों में (स्वस्ति) जल की उत्पत्ति रूप कल्याण करो और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) शत्रुओं को दबाने वाली सेना में (स्वस्ति) कल्याण करो और (नः) हमारे (पुत्रकृथेषु) पुत्रों के करने वाले (योनिषु) उत्पत्ति स्थानों में (स्वस्ति) कल्याण करो और (राये) गवादि धन के लिए कल्याण को (दधातन) धारण करो ॥२१॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्त्याभि या वायमेति ।
सा नो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देव गोपा ॥२२॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ मं० १६ ॥

(या) जो पृथिवी जान वालों के (प्रपथे) अच्छे मार्ग के लिए (स्वस्ति, इत्, हि) कल्याण कारिणी ही होती है और जो (श्रेष्ठा) अति सुन्दर (रेक्णस्वती) धन वाली है तथा (वामम्) सेवन के योग्य

यश को (अभि ए ति) प्राप्त होती हैं। (सा) वह पृथिवी (नः) हमारे (अमा) ग्रह को (निपातु) रक्षा करे (सा, उ) वही पृथिवी (अरणे) वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो और (देवगोपा) विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये (स्वावेशा) अच्छे स्थान वाली (भवतु) हो। परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे लिए सुन्दर मार्ग वाली अन्नादि धन पैदा करने वाली वनादि में जिमका सुप्रवन्ध है ऐसी और विद्वानों (Engineer इंजीनियरों) से जिसमें अच्छे स्थान वनाये गये हों ऐसी पृथ्वी प्राप्त हो ॥२२॥

इषेत्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावती रन वा अयक्ष्मा मा वःतेन ईशत माघश ग्वँ सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात वह्वीर्यजमानस्य पशून पाहि ॥२३॥

हे ईश्वर (इसे) अन्नादि इष्ट पदार्थ के लिए (त्वा) तुमको (आश्रयाम इति शेषः) आश्रयण करते हैं और (ऊर्जे) वलादि के लिए (त्वा) तुमको आश्रयण करते हैं। हे वत्स जोवो ! तुम (वायवः) वायु सदृश पराक्रम करने वाले (स्थ) हो। (सवितादेव) सव जगत् का उत्पादक देव ! (श्रेष्ठ तमाय कर्मणे) यज्ञरूप श्रेष्ठतम* कर्म के लिए (वः) तुम सबों को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे। उस यज्ञ द्वारा (इन्द्राय

---

* यह भगवदुक्ति, महा भाष्यकार की 'गोनर्दीयस्त्वाह' इस उक्ति की तरह से है।

† कर्म चार प्रकार का होता है—अप्रशस्त प्रशस्त, श्रेष्ठ और—श्रेष्ठतम। अप्रशस्त—चौर्यादि। प्रशस्त—वन्धुपोषणादि श्रेष्ठ धर्मार्थ स्थान वनाना आदि, श्रेष्ठतम=यज्ञ।

क्योंकि यज्ञ से वृष्टि, वृष्टि से शुद्ध अन्न की उत्पत्ति और रोगादि की निवृत्ति होती है।

भागम्) अपने ऐश्वर्य के भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ। यज्ञ संपादन के लिए (अघ्न्या:) न मारने योग्य (प्रजावती:) बछड़ा सहित (अनमीवा:) व्याधि विशेषों से रहित (अयक्ष्मा:) यक्ष्मा तपैदिक आदि बड़े रोगों से शून्य (गौवें सम्पादन करो) (व:) तुम लोगों के बीच जो (स्तेन:) चौर्यादि दुष्ट गुण युक्त हो। वह उन लोगों का (मा, ईशत) मालिक न बने। ऐसा यत्न करो जिससे (बह्वी: ध्रुवा:) बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौयें (अस्मिन् गोपतौ) निर्दुष्ट गोरक्षक के पास (स्यात्) बनी रहें। और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले के पशुओं को हे ईश्वर! तू (पाहि) रक्षा कर? इस मंत्र में कई वाक्य हैं, कोई वाक्य जीवमुखोपदेश परक है और कोई ईश्वर मुखोपदेश परक, यह बात यथा योग्य रीति से जान लेनी चाहिए। वाक्य सम्पत्ति के लिए उचित अध्याहार भी करना पड़ा है। अर्थान्तर भी पूर्वाचार्यों ने किए हैं; परन्तु हमें यह सर्वोत्तम मालूम होता है।

आनो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वतो ऽदब्धा सो अपरीत तास उद्भिद:।
देवानो यथा सदमिद् वृधे असन्न प्रायु वो रक्षितारो दिवे दिवे ॥२४॥

(यजु० अ० २५ । मं० १४)

हे ईश्वर (न:) हमको (भद्रा:) स्तुति के योग्य (क्रतव:) संकल्प (आयन्तु) प्राप्त हो (विश्वत:) सब ओर से (अदब्धास:) किसी से अविघ्नित (अपरीतास:) सर्वोत्तम (उद्भिद:) दु:खनाशक (देवा:) विद्वाव लोग (यथा) जैसे (न:) हमारी (सदम्) सभा में वा सर्वदा (वृधे एव) वृद्धि के लिए ही (असन्) हो, वैसे ही (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अप्रायुवो), रक्षितार:) प्रमाद शून्य रक्षा करने वाले बनाओ।

देवानां भद्रा सुमति ऋजूयतां देवाना ग्वँ रातिरभिनो निवर्त्तताम्।
देवानां ग्वँ सख्य मुपसेदिमा वयं देवा न: आयु: प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥

यजु० अ० २५ । मं० १५॥

हे भगवन् ! ऋजूयताम्) सरलतया आचरण करने वाले (देवा-नाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) अच्छी बुद्धि (नः) हमको (अभि, निवर्त्तताम्) प्राप्त हो और (देवानां, रातिः) विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान (प्राप्त हो)। (देवानाम्) देवो विद्वानों के (सख्यम्) मित्र भाव को (वयम्) हम (उपसेदिम) प्राप्त हो। जिससे कि वे (देवाः) देवता लोग (नः) हमारी (आयुः) अवस्था को (जीवसे) दीर्घ काल पर्यन्त जीने के लिए (प्रति रन्तु) बढ़ावें ॥२५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हू महे वयम्।
पूषा नो यथावेद साम सद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥
य० अ० २५। मं० १८॥

(वयम्) हम लोग (ईशानम्) ऐश्वर्य वाले (जगतस्तस्थुषस्पतिम्) चर और अचर जगत् के पति (धियं जिन्वम्) बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की (अवसे) अपनी रक्षा के लिए (हूमहे) स्तुति करते हैं। (यथा) जैसे कि वह (पूषा) पुष्टिकर्ता (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (असत्) हो (रक्षिता) सामान्यतया रक्षक और (पायुः) विशेषतया रक्षक (अदब्धः) कार्यों के साधक परमात्मा (स्वस्तये) कल्याण के लिए हो (वैसे ही हम स्तुति करते हैं)

स्वस्तिन इन्द्रो वृद्ध श्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥
य० अ० २५ ॥मं० १९॥

(वृद्धश्रवा.) बहुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य युक्त ईश्वरः (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापन करे और (पूषा) पुष्टि करने वाला (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता ईश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे (ताक्ष्यः) तेजस्वी (अरिष्ट-

नेमिः) दुःखहर्ता ईश्वर (नः) हमको (स्वस्ति) कल्याण करे (वृहस्पतिः) बड़े बड़े पदार्थों का पति (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे ॥२७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ग्वँ सस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितं यदायुः ॥
॥ य० अ० २५ । मं० २१ ॥

हे (यजमा:) संग करने वाले (देवाः) विद्वान् लोगों! हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) अनुकूल ही (श्रुणुयाम) सुनें (अक्षभिः) नेत्रों से (भद्रम्) अच्छी वस्तुओं को (पश्येम) देखें। (स्थिरैरङ्गैः) दृढ़ अंगों से (तुष्टुवां सः) आपकी स्तुति करने वाले हम लोग (तनूभिः) शरीरों से वा भार्यादि के साथ (देवहितम्) विद्वानों के लिये कल्याण कारी (यद् आयुः) जो आयु है उसको (व्यशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥२८॥

२३१ २ ३१२ ३२ ३१२
अग्नआ याहि वीतये गृणानो हव्यदातयेऽ
१ २२२ ३१२
नि होता सत्सि वर्हिषि ॥२९॥

॥ सा० छन्द आ० प्रपा० १ । मं० १ ॥

हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वीतये) कान्ति तेजोविशेष के लिए (गृणानः) प्रशंसित हुए आप (हव्यदातये) देवताओं के लिए हव्य देने के (आयाहि) प्राप्त होओ। (होता) सब पदार्थों को ग्रहण करने वाले आप (वर्हिषि) यज्ञादि शुभ कर्मों में स्मरणादि द्वारा हमारे हृदयों में (नि, सत्सि) स्थित होइये (भौतिकाग्निपरक भी इसका व्याख्यान होता है) ॥२९॥

१२ ३२३ २३ १२ ३२
त्वमग्ने यज्ञाना ग्वँ होता विश्वेषां हितः ।

३२३ १२३ १२
देवोभिर्मानुषे जने ॥३०॥

॥ सा० छन्द आ० प्रपा० १। मं० ३ ॥

हे (अग्ने) पूजार्चनायोग्य! ईश्वर! (त्वम्)तू (विश्वेषाम्, यज्ञानाम्) छोटे बड़े सब यज्ञों का (होता) उपदेष्टा है। (देवेभिः) विद्वान् लोगों से (मानुषे जने) विचार शील पुरुषों में भक्त्युत्पादन द्वारा तुम (हितः) स्थित किए जाते हो ॥३०॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ॥
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥

अथर्व० कां० १ । वर्ग १ अनु० १ । प्र० १ । मं० १

(त्रिषप्ताः) तीन रजस्, तमस् और सत्व गुण तथा सात ग्रह अथवा तीन सात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण (ये) जो (विश्वा रूपाणि) सब चराचरात्मक वस्तुओं को (बिभ्रतः) अभिमत फल देकर पोषण करते हुए (परियन्ति) यथोचित लौट पौट होते रहते हैं (तेषाम्) उनके सम्बन्धी (मे तन्वः) मेरे शरीर में (बला) बलों को (अद्य) आज (वाचस्पतिः) वेदोक्त वाणी का पति परमेश्वर (दधातु) धारण करावे।

॥ इति स्वस्तिवाचनम् ॥

"अथ शान्ति करणम्"

शंन इन्द्राग्नी भवताभवोभिः शंन इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः शंन इन्द्रापूषणा वाज सातौ ॥१॥

ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १ ॥

(इन्द्राग्नीः) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) रक्षणादि द्वारा (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (भवताम्) हों । (रातहव्याः) ग्रहण योग्य वस्तु जिन्होंने दी है ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजली विद्युत् और औषधि गण (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए और (शंयोः) शान्तिहेतुक और विषयहेतुक सुख के लिए (शम्) प्रसन्नतादायक हों (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और वायु (न) हमारे लिए (वाजसातौ) युद्ध में वा अन्न लाभ विषय में (शम्) कल्याणकारक हों ।

शंनो भगः शंभु नः शंसो अस्तु शंनः पुरन्धिः शम सन्तुरायः ।
शंनः सत्यस्य सुयमस्यशंसः शंनो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० २ ॥

(नः) हमारे लिए (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुखदायक हो और (नः) हमारे लिए (शंसः) प्रशंसा (शम उ) शान्ति के लिए ही (अस्तु) हो । हमारे लिए (पुरन्धिः) बहुत वुद्धि (शम) सुखकारक हो (रामः) धन (शम् ३) शान्ति के लिए ही (सन्तु) हो । (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शंसः) कथन (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो (नः) हमारे लिए (पुरुजातः) बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायाधीश (शम्) सुख देने वाला (अन्तु) हो ॥२॥

शंनो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शंन्न ऊरूची भवतु स्वधाभिः ॥
शं रोदसी वृहती शंनो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥
॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० ३ ॥

(नः) हमको (धाता) पोषक सब वस्तु (शम्) शान्ति कारक हों। (धर्ता) धारक सब वस्तु (शम्, उ) शान्ति के लिए ही (नः) हमारे लिए (अस्तु) हैं। (नः) हमारे लिए (उरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (शम्) कल्याण कारक (भवतु) हो। (वृहती) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष सहित पृथिवी वा प्रकाश सहित अन्तरिक्ष (शम्) शान्ति देने वाला हो। (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख कारक हों। और (नः) हमारे लिए (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) शोभन आह्वान (शम्) सुखकारक (सन्तु) हों ॥३॥

शंनो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शंनो मित्रा वरुणावश्विनाशम् ॥
शंनः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शंन इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥
॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० ४ ॥

(ज्योतिरनीका) प्रकाश ही है अनीक मुख वा सेना की तरह जिसका ऐसा (अग्निः) अग्नि (नः) हमको (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो। (मित्रावरुणौं) प्राण और उदान वायु (नः) हमको (शम्) सुख पहुँचाने वाले हो। (आश्विन) उपदेशक और अध्यापक (शम्) सुख पहुँचाने वाले हों। (सुकृताम्) धर्मात्माओं के (सुकृतानि) धर्माचरण (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले (सन्तु) हो। (न) हमारे लिए (इषिरः) गमनशील (वातः) वायु (शम्) सुख देता हुआ (अभिवातु) बहे ॥४॥

शंनो द्यावा पृथिवी पूर्वहुतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ॥
शंन ओषधीर्वनिनो भवन्तु शंनो रजस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥
[ऋ० मं० ७ सू० ३५ । मं० ५]

(द्यावापृथिवी) विद्युत् और भूमि (पूर्वहुतौ) पूर्व पुरुषों की प्रशंसा जिसमें हो ऐसी क्रिया में (नः) हमारे लिए (शम्) शान्ति-दायक हो। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक (दृशये) ज्ञान सम्पत्ति के लिए (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो। (ओषधिः) ओषधियाँ और (वनिनः) वृक्ष (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों (रजसस्पतिः) रजोलोक का पति (जिष्णुः) जयशील महापुरुष (नः) हमारे लिए (शम्) सुख देने वाला (अस्तु) हो।

शंन इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।

शंनो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ६ ॥

(देवः) दिव्य गुणयुक्त (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) धनादि पदार्थों के साथ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (आदित्येभिः) संवत्सरीय मास के साथ (सुशंसः) शोभन प्रशंसा वाला (वरुणः) जल समुदाय (शम्) सुख कारक हो (जलाषः शान्तस्वरूप (रुद्रः) पर-मात्मा (रुद्रभिः) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने गुणों के साथ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख देने वाला हो (त्वष्टा) विवेचक विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से (ग्नेति वाङ्नाम निघण्टौ।१।११) इस संसार में (शम्) सुखमय उपदेशों को (नः) हमारे लिए (शृणोतु) सुनावे (अन्तर्भावित ण्यर्थः) ॥६॥

शंनः सोमो भवतु ब्रह्म शंनः शं दो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।

शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

॥ ऋ० मं० ७ सू० ३५। मं० ७ ॥

(नः) हमारे लिए (सोमः) चन्द्रमा (शम्) सुखकारक (भवतु) हो (नः) हमारे लिए (ब्रह्म) अन्नादि रूप तत्व (शम्) शान्तिकारक

हो। (ग्रावाण:) शुभ कार्यों के साधनभूत प्रस्तर=पत्थर (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले हों। (यज्ञा:) सब प्रकार के यज्ञ (शम्, उ) शान्ति ही के लिए (सन्तु) हों। स्वरूणाम्) यज्ञ स्तम्भों के (मितयः) परिमाण (नः) हमको (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (नः) हमको (प्रस्वः) ओषधियाँ (शम्) सुख देने वाली हों। (वेदिः) यज्ञ की वेदी कुण्डादिक (शम्, उ) शान्ति के ही लिए (अस्तु) हों।

शंनः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शंनश्चतस्र प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ६ ॥

(उरुचक्षाः) बहुत तेज हैं जिसके ऐसा (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखपूर्वक (उद्, एतु) उदय को प्राप्त हो। (चतस्रः) चारों (प्रदिशाः) पूर्वादि बड़ी दिशायें व ऐशान आदि प्रदिशायें (नः) हमारे लिए (शम्) सुख करने वाली (भवन्तु) हों (पर्वतः) पर्वत (ध्रुवयः) स्थिर और (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों और (नः) हमारे लिए (सिंधवः) नदियाँ वा समुद्र (शम्) शान्तिदायक हों। (आपः) जलमात्र वा प्राण (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (सन्तु) हों ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्क्काः।
शंनो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ९ ॥

(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी माताएँ (नः) हमारे लिए (शम्) शान्ति के लिए (भवतु) हों। (स्वर्काः) शोभन विचार वाले (मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोग (नः) हमारे लिए (शम्) शान्ति के लिए (भवन्तु) हों। (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हमको (शम्) शान्तिदायक हों। (पूषा) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्य वा व्यायाम (नः) हमको (शम्, उ) शान्ति के लिए ही (अस्तु) हो।

(भवित्रम्) अन्तरिक्ष व जल वा भवितव्य (नः) हमको (शम्) सुख-कारक हो (वायुः) पवन (शम् उ) शान्ति के लिये ही (अस्तु) हो।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभाती ॥

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १० ॥

(सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (भायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हो। (उषसः) प्रभात वेलायें (विभातीः) विशेष दीप्ति वाली (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (भवतु) हों। (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमको और (प्रजाभ्यः) संसार के लिए (शम् भवतु) कल्याणकारी हो। (क्षेत्रस्य) क्षेत्र का (पतिः) स्वामी कृषिकार (शम्भुः) सब को सुख देने वाला (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिकारी (अस्तु) हो ॥१०॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वतीसह धीभिरस्तु। शमभि-षाचः शमुरातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शंनो अप्याः ॥११॥

॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० ११॥

(देव्याः) दिव्य गुण युक्त (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (नः) हमारे लिए (शम् भवन्तु) सुख देने वाले हों (सरस्वती) विद्या सुशिक्षा युक्त वाणी (धीभिः) उत्तम बुद्धियों के (सह) साथ (शम् अस्तु) सुखकारिणी हों। (अभिषाचः) यज्ञ के सेवक व आत्मदर्शी (शम्) शान्तिदायक हों। (रातिशाचः) विद्या धनादि चे दान का सेवन करने वाले (शम्, उ,) शान्ति के लिए हों। (दिव्याः) सुन्दर (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों। (अप्याः) जल में पैदा हौने वाले पदार्थ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हो ॥११॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १२॥

(सत्यस्य पतयः) सत्य भाषणादि व्यवहार के पालक (नः) हमारे लिए (शम्, भवन्तु) सुखकारी हों (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (नः) हमको (शम्) सुखद हों। (गावः) गौएँ (शम्, उ) शान्ति के लिए ही (सन्तु) हो। (ऋभवः) श्रेष्ठ बुद्धि वाले (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ताः) अच्छे कार्यों में हाथ देने वाले (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों (हवेषु) हवनादि सत्कर्मों में (पितरः) माता पिता आदि (नः) हमारे लिए (शम्) सुख लारक (भवन्तु) हों ॥१२॥

शंनो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नो ऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥

ऋ० म० ७। सू० ३५। मं० १३॥

(एकपात्) जगत् रूप पादवाला अर्थात् जिसके एक अंश में सब जगत् है वह अनन्त स्वरूप (अजः) अजन्मा (देवः) ईश्वर (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिए (अस्तु) हो (बुध्न्यः, अहिः) अन्तरिक्ष में पैदा होने वाले मेघ (नः) हमारे कल्याण के लिए हों। (सनुद्रः) सागर (शम्) सुखकारी हो (अपाम्) जलों की (नपात्) नौका वा जलयान (नः) हमको (शम्पेरुः) सुख पूर्वक पालन करने वाली (अस्तु) हो (देवगोपाः) देव रक्षक हैं जिसमें ऐसा (पृश्निः) अन्तरिक्ष स्थल (नः) हमको (शम् भवतु) सुखकारक हो ॥१३॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

य० अ० ३६ मं० ८॥

हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं, उन आपकी कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्र वा पक्षी आदि के लिए (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पद) गौ आदि के लिए (शम्) सुख होवे ॥१४॥

शंनो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्य्यः ।

शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१५॥

॥ य० अ० ३६ मं० १० ॥

हे परमेश्वर ! (वातः) पवन (नः) हमारे लिए (शम्) सुख-कारी (पवताम्) चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुख-कारी तपतु तपे (कनिक्रदत्,) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्ताम गुण युक्त, विद्युत् रूप अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्य) मेघ हमारे लिए (अभिवर्षतु) भली प्रकार वर्षा करे ॥१५॥

अहानिशं भवन्तु नः शँ रात्रीः प्रति धीयताम्
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः,
शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रा पूषणा वाज सातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः ॥१६

॥ अ० अ० ३६ । मं० ११ ॥

हे परमेश्वर ! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिए (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रिः) रात (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करे (इन्द्राग्नी) बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें (रात-हव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे आवे ऐसे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी हों । (वाजसातौ) अन्नों

के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी हों (इन्द्रा सोमा) बिजली और औषधियाँ (शम्) सुखकारिणी हों ॥१६॥

शं नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१७॥

॥ य० अ० ३६ मं० १२ ॥

हे जगदीश्वर ! (अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिए (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हमारे लिए (शयोः) सुख की वृष्टि (अभिस्रवन्तु) सब ओर से करें ॥१७॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्ति रोषधयः शान्तिः ।

वनस्पतयः शान्ति विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्ति रेधि ॥१८॥

॥ य० अ० ३६ । मं० १७ ॥

हे परमेश्वर ! (द्यौः) प्रकाश युक्त सूर्यादि (अन्तरिक्ष ग्वँ) सूर्य और पृथिवी के बीच का लोक (पृथिवी) भूमि (आपः) जल (ओषधयः) सोमलता आदि औषधियाँ (वनस्पतयः) वनस्पति वट आदि वृक्ष (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् लोग (ब्रह्म) वेद (सर्वम्) सब वस्तु (शान्ति) शान्ति सुखकारी निरुपद्रव हों। शान्ति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मन्त्र में अन्वय है। (शान्तिरेव शान्तिः) स्वयं शान्ति भी सुखदायिनी हो। और (सा) वह (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझको (एधि) हो या प्राप्त हो ॥१८॥

तच्चतुर्देव हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं
जीवेम शरदः शतं

शृणुयाम शरदः शतं
प्रब्रवाम शरदः शतं,
अदीना स्याम शरदः शतं
भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥

॥ य० अ० ३६ । मं० २४॥

हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर! आप (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र तुल्य सबके दिखाने वाले (पुरस्तात्) अनादि काल से (उत्चरत्) अच्छी तरह सब के ज्ञाता हैं। (तत्) उस आपको हम (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम)* ज्ञान द्वारा देखें। और आपकी कृपा से (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) जीवें। (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें व उपदेश करें। (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (अदीनाः) दीनता रहित अर्थात् धनवान् (स्याम) हों (च) और (शतात् शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें, जीवें, सुनें और अदीन रहें ॥१९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसंकल्प मस्तु ॥२०॥

॥ य० अ० ६४ ॥ मं० १ ॥

हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से (यत्) जो (देवम्) दिव्य गुणों के युक्त (दूरंगमम्) दूर दूर जाने वाला वा पदार्थों को ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रकाश करने वाला (एकम्) अकेला (जाग्रतः) जगाने वाले के (दूरम्) दूर दूर (उत्, एति) अधिकतया भागता हैं (उ) और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुए को (तथा एव) उसी प्रकार (एति) प्राप्त होता है। (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) अच्छे विचार वाला (अस्तु) हो ॥२०॥

---

* ईश्वर को ज्ञान दृष्टि से मनन करने का तात्पर्य यहां 'पश्येम' शब्द से है।

येनकर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्तिविदथेषुधीराः ॥
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥२१॥

॥ य० अ० ३४ । मं० ४ ॥

हे जगत्पते ! (येन) जिस मन से (अपसः) सत्कर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मनको दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले, बुद्धिमान लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि, धार्मिक कार्यों में और (विदथेषु) वैज्ञानिक और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) दृष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं। और (यत्) जो (अपूर्वम्) अदभुत (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) भीतर (यक्षम्) मिला हुआ है। (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) श्रेष्ठ संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥११॥

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु ॥
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥

॥ य० अ० ३४ ॥ मं० ३ ॥

हे प्रभो ! (यत्) जो (प्रज्ञानम्) बुद्धि का उत्पादक (उत्) और (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्य स्वरूप (च) और (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) भीतर (अमृतम्) नाश रहित (ज्योतिः) प्रकाश स्वरूप है। (यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (किम्, चन,) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पम्) शुद्ध विचार वाला (अस्तु) हो ॥२२॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीत ममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥२३॥

॥ य० अ० ३४ ॥ मं० ४ ॥

हे सर्वेश्वर ! (येन अमृतेन) जिस नाशरहित मन से (भूतं,

भुवनं, भविष्यत् सर्वमिदं परिगृहीतम् ।।) भूत, वर्तमान भविष्यत् सब यह जाना जाता है और (येन) जिससे (सप्तहोता) जिसमें सात होता हों ऐसा (यज्ञः) अग्निष्टोमादि यज्ञ (अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं) (तायंसे) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मुक्ति आदि सब पदार्थों के विचार वाला (अस्तु) हो ।।२३।।

यस्मिन्नृचः साम यजूँ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिताः रथनाभाविवाराः ।
यस्मिश्चित्त ग्वँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।२४।।

।। य० अ० ३४ । मं० ५ ।।

हे अखिलोत्पादक ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचःसाम) ऋग्वेद तथा सामवेद तथा (यस्मिन्) जिसमें (यजूग्वँ षि) यजुर्वेद और अथर्ववेद की (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि पहिये के बीच के काष्ठ में आरा जैसे (प्रतिष्ठिता) स्थित है और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्ताम) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है। (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचार रूप संकल्प वाला (अस्तु) हो।

सुषार थिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते ऽभीशुभिर्वाजिनइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।२५।।

।। य० अ० ३४ । मं० ६ ।।

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः अश्वानिव) अच्छा सारथी घोड़ों को जैसे (नेनीयते) अतिशय करके (इधर उधर) ले जाता है और जो मन अच्छा सारथी (अभीशुभिः) रस्सियों से (वाजिनइव) वेग वाले घोड़ों को जैसे (यमयतीतिशेषः) मनुष्यों को नियम में रखता है और (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित है

(अजिरम्) जरा रहित है (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥२५॥

१, २, ३ २उ३ १ २२ ३१२ र
स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते।
१ २ ३ ११
शं ँ राजन्नोषधीभ्यः ॥२३॥
॥ साम० उत्तरार्च्चिके० प्रपा० १ मं० १ ॥

हे (राजन्) सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! (सः) प्रसिद्ध आप (नः) हमारे (गवे) गवादि दूध देने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों। (जयाय) मनुष्य मात्र के लिए (शम्) शान्ति देने वाले हों। (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों। (ओषधीभ्यः) गेहूँ आदि औषधियों के लिए हमें (शम पवस्व) शान्ति दीजिए ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चाद भयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥
॥ अथर्व० का० १९। सू० १७। मं० ५ ॥

हे भगवन् ! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक (नः) हमारे लिए (अभयम्) निर्भयता को (करति) करे। (उभेइमे) ये दोनों (द्यावा-पृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करें। (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो। (उत्तरात्, अधरात्) ऊँचे और नीचे से (नः) हमको (अभयम्, अस्तु) भय न हो ॥२७॥

अभयं मित्राद भयम मित्राद भयं ज्ञातादभयं परोक्षात्,
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥
॥ अथर्व० का० १९। सू० १७। मं० ६ ॥

हे जगत्पते ! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो। (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो। (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो। (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएँ (मम, मित्रम्) मेरी मित्र (भवन्तु) हों।

।। इति शान्तिकरणम् ।।

विवाह विधि का प्रारंभ

कन्या और वर पक्ष के पुरुष बड़े मान से वर को घर ले जावें, जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करे। उसकी रीति यह है—

कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह कर

वाणी तथा आसन द्वारा वर का सत्कार

† साधु भवाना स्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ।१

अर्थ :—(भवान्) आप (साधु) अच्छे प्रकार (आस्ताम्) बैठिए (भवन्तम्) आपका हम सब (अर्चयिष्यामः) पूजन सत्कार करेंगे।

इस वाक्य को बोले फिर—

ओं अर्चय ॥ अर्थ :— (अर्चय) सत्कार कीजिए।

ऐसा प्रत्युत्तर देवे। पुनः जो वधू और कार्यकर्ता ने वर के लिए उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो उसको वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे।

ओं विष्टरो विष्टर * प्रतिगृह्यताम् ॥

---

† यहाँ से लेकर समस्त विवाह की पूर्व विधि, विशेष पार० गृ० सू० का० १। क० ३। सू० ४ आदि के अनुसार है, इसमें सब स्थलों में सूत्रादि लिखने की आवश्यकता नहीं।

१—इस वाक्य को बोल कर वधू वर जो तथा वर वधू को पुष्पमाला पहनावे।

* आदरार्थ तीन बार कथन है ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए।

अर्थ :— (विष्टरः) यह आसन है (प्रतिगृह्यताम्) आप ग्रहण कीजिये।

वर—ओं प्रतिगृह्णामि

अर्थ—(प्रतिगृह्णामि) स्वीकार करता हूँ।

इस वाक्य को बोलकर वधू के हाथ से आसन ले, बिछा उस पर सभा मण्डप में पूर्वाभिमुख बैठ के, वर

१ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।
इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति।

अर्थ :—(उद्यताम्) प्रकाश करने वाले ग्रह नक्षत्रादिकों के बीच में (सूर्यं, इव) सूर्य जैसे श्रेष्ठ हैं वैसे ही (समानानाम्) कुल, ज्ञान आचार शरीर अवस्था तथा अन्य गुणों से सजातीय तुल्य पुरुषों में (वर्ष्म) श्रेष्ठ (अस्मि) हूँ (यः कः चः) और जो कोई (मा) मुझे (अभिदासति) उपक्षीण करना चाहता है अर्थात् मुझे नीचा दिखाना चाहता है (तम्) उस पुरुष को लक्ष्य बनाकर (इमम्) इस आसन के (अभि) ऊपर (तिष्ठामि) बैठता हूँ अर्थात् उसे इस आसन के तुल्य नीचा करके बैठाता हूँ।

पैर धोने के लिए जल से सत्कार

ओम् पाद्यम् पाद्यम् पाद्यम् प्रतिगृह्यताम्।

अर्थ :—(पाद्यम्) पैर धोने के लिए जल (प्रतिगृह्यताम्) स्वीकार कीजिए।

इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ से उदक ले पग* प्रक्षालन करे और उस समय—

ओ विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः॥

१—यह मंत्र बाल विवाह का निषेधक है।

विशेष—यदि घर का प्रवेशक द्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख खड़े रह के, यदि ब्राह्मण वर्ण हो तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बायाँ और अन्य क्षत्रियादि वर्ण हो तो प्रथम बायाँ पग धोवे पश्चात् दाहिना (पार० गृ० सू० का० । क० ३ । सू० ११) ।

अर्थ :—हे जल ! तू (विराजः) विविध प्रकार से शोभित होने वाले अन्न का (दोहः) सारभूत रस (असि) हैं। (विराजो दोहम्) उस अन्न के सारभूत तुझको मैं (अशीय) व्याप्त होऊँ अर्थात् तुझसे रोगादि निवृत्ति के लिए ईश्वर करे कि सम्बन्ध करूँ (विराजः दोहः) अन्न का सार तू इस समय (मयि) मेरे विषय में (पाद्यायै) पैरों की रक्षा के लिये उपस्थित है।

इस मन्त्र को बोले फिर कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे पुनः कन्या :—

अर्घजल से मुख धोने का सत्कार

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ।

अर्थः—(अर्घः) सत्कारार्थ—मुखप्रक्षालनार्थ जल० । शेष पूर्ववत् ॥

इस वाक्य को बोलकर वर के हाथ में देवे और वर—ओं गृह्णामि ।

अर्थ :—स्वीकार करता हूँ ।

इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ से जल पात्र लेकर उससे मुख प्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोकर—

ओं आपः स्थ युष्माभिः सर्वान्कामान वाप्नवानि ।

ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ।

ओं अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥

अर्थ :—हे जलो ! तुम (आपः) आधि नैरोग्य लाभादि के हेतु (स्थ) हो। (युष्माभिः) तुम से (सर्वान्) सब अर्थात् जल से सब

शरीर के विकारों को दूर करूँ जिससे स्वस्थता की उपलब्धि हो। हे जलो (वः) तुमको मैं (समुद्रम्) अन्तरिक्षलोक में (प्रहिणोमि) भेजता हूँ—पहुँचाता हूँ। अर्थात् छोड़ता हूँ इससे तुम (स्वाम्, योनिम्) अपने कारणी भूत जल के (अभि) सम्मुख (गच्छत्) जाओ। (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर लोग (अरिष्यः) रोग रहित, दुःख रहित हों। (मत्) मुझसे (पयः) मंगलजल ईश्वर करे कि (मा परासेचि) न हटे अर्थात् मैं सर्वदा पूजनीय बना रहूँ। मैं जल से काम लेकर उसे छोड़ता हूँ जिससे वह अपने कारण स्वरूप को प्राप्त होकर फिर अन्य वीरादि का उपकारक हो।

इन मंत्रों को बोले। तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाए हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे फिर कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और इस समय कन्या—

आचमन के लिए जल द्वारा सत्कार

ओं आचमनीय माचमनीयमाचमनीयम्प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थ—(आचमनीयम्) पीने योग्य जलसहित पात्र० ॥शेषपूर्ववत् ॥

इस वाक्य को बोल कर वर के समक्ष करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥२

अर्थ :—स्वीकार करता हूँ।

इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ से जलपत्र को ले सामने धर उसमें से दाहिने हाथ में जल जितना अंगुलियों के मूल तक पहुँचे उतना लेकर वर—

ओं आमा (१) ऽगन् यशसा संसृज वर्चसा।
तं मा कुरु प्रियं प्रजा नामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥

---

(१) इस मंत्र को तीन बार बोलकर तीन आचमन करे।

अर्थ :—हे जलेश्वर ! हे परमात्मन् ! आप (मा) मुझे (यशसा) यश के (अमा) साथ (अगन्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ और (तम्) आपका आश्रय करने वाले मुझको (वर्चसा) अपने तेज से (संसृज) युक्त करो और (प्रजानाम्) प्रजाओं पुत्र पौत्रादि को (प्रियम्) प्रेमपात्र (कुरु) करो (पशूनाम्) गवादि पशुओं का (अधिपतिम्) स्वामी बनाओ और जल आदि से (तनूनाम्) शरीरावयवों को (अरिष्टम्) अहिंसक-पीड़ा न देने वाला करो।

इस मन्त्र से एक आचमन, इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार इसी मन्त्र को पढ़कर दूसरा और तीसरा आचमन करे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क*—का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

मधुपर्क से सत्कार

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ।

अर्थ :—यह मधुपर्क है ग्रहण कीजिये ।

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि—अर्थ :—स्वीकार करता हूँ ।

इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ से मधुपर्क को दोनों हाथों ले और उस समय—

१ ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

---

*मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी व शहद मिलाया जाता है उसका प्रमाण बारह तोले दही में चार तोले शहद अथवा चार तोले घी मिलाना चाहिये। मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है।

[१] इस मन्त्र से ढके हुए मधुपर्क को देखे।

अर्थ :— (त्वा) तुझे (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (प्रति, ईक्षे) देखता हूँ।

इस मंत्र वाक्य को बोल कर मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥

॥ य० अ० १ । मं० १० ॥

अर्थः—परमात्मा के ऐश्वर्य के लिये तुझे ग्रहण करता हूँ। सूर्य और चन्द्रमा के जैसे परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिये तथा प्राणादि वायु के ग्रहण और त्याग के लिये ग्रहण करता हूँ।

इस मंत्र को बोल कर मधुपर्क पात्र को वाम हाथ में लेवे और—

ओं भूर्भुवः स्वः। ओं मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्न स्सन्त्वोषधीः ॥१॥

य० अ० १३ । मं० २७ ।

हे परमात्मन् ! (ऋतायते) यज्ञ की इच्छा करने वाले पुरुष के लिये (वाताः) वायु (मधु) सरस नीरोग होकर बहे (सिन्धवः) नदियां (मधु) सरस जल को (क्षरन्ति) (छान्दसत्वा त्पुरुष व्यत्ययः) देवे। (नः) हमारे लिए (ओषधीः) रोग नष्ट करने वाली ओषधियां (माध्वीः) माधुर्ययुक्त (सन्तु) हों।

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु नक्त मुतोषसो मधु मत्पार्थिवँ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२॥

॥ य० अ० १३ । मं २८ ॥

अर्थ :— (नक्तम्) रात्रि (मधु) निर्विघ्न व्यतीत हों (उत्) और (उषसः) प्रभात काल की वेलाएं भी निरुपद्रव हों। (पार्थिवरजः) यह पार्थिव लोक, जो कि माता के तुल्य रक्षक है (मधुमत्) विषैले

जन्तुओं से रहित हो। (नः) हमारा (पिता) के तुल्य रक्षक (द्यौः) अन्तरिक्ष मण्डल (मधु) सुखकारक (अस्तु) हो।

ओं भूर्भुवः स्वः। मधुमान्नो वनस्पति र्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वी-र्गावो भवन्तु नः ॥३॥

॥ य० अ० १३। मं० २९ ॥

अर्थ :— (नः) हमारे लिए (वनस्पतिः) यज्ञोपयुक्त ओषधियाँ वा सोम (मधुमान्) माधुर्य गुणयुक्त हों (सूर्यः) सूर्यमण्डल (मधुमान् अस्तु) सुखकारी हो। (गायः) सूर्य की किरणें वा यज्ञोपयोगी गवादि पशु (माध्वीः) रसवाली (भवन्तु) हों ॥३॥

उपर्युक्त तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे।

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥

॥ पार० गृ० सू० का० १। क० ३। सू० ९॥

अर्थ :— हे अग्ने ! जठराग्ने (श्यावास्याय, ते) पीले वर्ण वाले तेरे लिए मैं (नमः) आदर करता हूँ और (तें) तेरे (अन्नशने) ह्रस्वश्छान्दसः। अन्न के तुल्य अशन-भोज्य इस मधुपर्क में (यत्) जो वस्तु न खाने योग्य (आ, विद्धम्) मिली हुई है (तत्) उसे (निष्कृन्तामि) हटाता हूँ।

इस मंत्र को पढ़ दाहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार बिलोवे* और उस मधुपर्क में से वर

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु।

---

* इस मंत्र से मधुपर्क का विलोडन करते हुए यदि कोई छोटा तृण आदि पड़ा होवे तो निकाल देना चाहिए। यहाँ पाराशर का ऐसा मत है कि "अनामिकांगुष्ठेन च त्रिर्निरुक्षयति" अनामिका व अँगूठे से तीन बार मधुपर्क का थोड़ा सा हिस्सा पात्र से बाहर फेंक देना चाहिये।

अर्थ :— (गायत्रेण छन्दसा) गायत्री छन्द के साथ (त्वा) तुझे (वसवः) वसुसंज्ञक विद्वान् (भक्षयन्तु) खावें।

इस मंत्र से पूर्व दिशा।

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थ :— त्रिष्टुप् छन्द से रुद्र तेरा भक्षण करें।

ओं आदित्या स्त्वा जागतेन छन्दसा भक्षयन्तु।

अर्थ :—(जागतेन, छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द को बोलते हुए (त्वा) मुझ (विश्वे, देवा) सब विद्वान् (भक्षयन्तु) खावें ॥

इस मंत्र से उत्तर दिशा में थोड़ा मधुपर्क छोड़े अर्थात छींटे देवे।

—तीन बार ऊपर फेंके—

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥

आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० १४-१५॥

अर्थ :—(भूतेभ्यः) अन्य प्राणियों के लिए भी (त्वा) तुझे (पारिगृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।*

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमम्। ओं रूपमन्नाद्यम् तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमा मधव्योन्नादोऽसानि।

अर्थ :— हे विद्वानों! (यत्) जो (मधुनः) पुष्पों के रस का (मधव्याम्) मिष्टता के लिए उपयुक्त (परमम रूपम्) यह पवित्र स्वरूप है और यह (अन्नाद्यम्) अन्न की तरह खाने योग्य है (अहम्) मैं (तेन मधुनो मधव्येन) उसी मधु के माधुर्योपयोगी (अन्नाद्येन) अन्न के तुल्य खाने योग्य (परमेण रूपेण) सुन्दर स्वरूप से (परमः, मधव्यः अन्नादः) पवित्र, मधुरभाषी, अन्नमात्र का भोक्ता आपकी कृपा से (असानि) होऊँ ॥

---

* यहाँ पर जैसा आश्वलायन गृह्यसूत्र से टीकाकार का मत है वैसा ही मूल में लिख दिया है। संभव है वसु आदि ब्रह्मचारियों का नाम ले लेकर मधुपर्क के भाग को छोड़ने से उनकी प्रतिष्ठा पूर्व काल में द्योतित होती है।

इस मंत्र को तीन बार बोल कर एक एक भाग में से वर थोड़ा २ प्राशन करे वा सब प्राशन करे और जो उन पात्रों में शेष मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक (पुत्र वा छात्र) को देवे या जल में डाल देवे।*

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥

आश्व० ए० सू० अ० १। क० २४। सू० २१ ॥

अर्थ—हे अमृत ! तू प्राणियों का आश्रय भूत है। यह हमारा कथम शोभन हो।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥

आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० १२ ॥

अर्थ :—मुझमें सत्यता, कीर्ति, शोभा, लक्ष्मी स्थित हों।

इन दो मंत्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे। तत्पश्चात् वर—

ओं वाङ्मऽ आस्येऽस्तु।

आदि मन्त्रों द्वारा चक्षुरादि इन्द्रियों को जल से स्पर्श करे, फिर कन्या—

'दहेज में गौ आदि देना'

ओं गौ र्गौ र्गौः प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थ—यह गाय लीजिये।

इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जो कि वर के योग्य हो, अर्पण करे—और

ओं प्रतिगृह्णामि।

---

* जहाँ कोई मनुष्य आते जाते न हों वहाँ डाले—ऐसा पारस्कर का मत है। जल में डालना—गृ० सू० १।२४।१९ का मत है।

अर्थ :— मैं स्वीकार करता हूँ ।

इस वाक्य से उसको ग्रहण करे इस प्रकार मधुपर्क विधि यथावत् करके वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभा मण्डप स्थान† से घर में लें जाकर शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बिठावे और कार्यकर्ता तथा पिता आदि उत्तराभिमुख बैठ कर—

—: गोत्रोच्चारण :—

ओं* अमुक गोत्रोत्पन्नामिमाममुक नाम्नीमलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ।

इस प्रकार बोल कर वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रख के उसके हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना चाहिए ।। और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ।।

अर्थ :— स्वीकार करता हूँ ।

ऐसा बोल के पुनः ।

ओं जरां गच्छ परि धत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।।

पार० गृ० सू० का० । १ । क० ४ ।।

---

† यदि सभामण्डप स्थापन न किया गया हो तो जिस घर में मधुपर्क किया हो उससे दूसरे घर में वर को ले जावे ।

* अमुक गोत्रोत्पन्नाम् के ऊपर 'वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् नाम संकीर्तयेद्विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि" इत्यादि । पार० गृ० सू० का० १ । क० ४ का हरिहर भाष्य देखना चाहिये वहाँ स्पष्ट है ।

यहां वर वधू दोनों पक्षों के पिता, पितामह, प्रपितामह का गोत्रोच्चारण पूर्वक नाम लिया जाता है ।

अर्थ :— हे कन्ये ! तू (जराम्) निर्दोष वृद्धावस्था को मेरे साथ (गच्छ) प्राप्त हो। और मेरे इस दिये हुए (वासः) वस्त्र को (परिधत्स्व) पहन। (कृष्टीनाम्) कामादिकों से खैंचे हुए मनुष्यों के बीच में (वा) निश्चय रूप से (अभिशस्तिपाः) अभिशाप प्रमाद से अपने आपकी रक्षा करने वाली (भव) हो। (शतं च शरदः) और सौ वर्ष पर्यन्त (जीव) प्राण धारण कर और (सुवर्चाः) तेजस्विनी होकर (रयिम्) धन का और (अनु) पीछे (पुत्रान्) पुत्रों का (संव्ययस्व) संग्रह कर। (हे आयुष्मति) सुन्दर आयु वाली कन्ये (इदं वासः) इस वस्त्र को (परि, धत्स्व) पहन।

इस मंत्र को बोल के बधू को उत्तम साढ़ी जम्फर आदि देवे। तत्पचात्—

वर का वधू को स्वदेशी वस्त्र देकर सत्कार करना

ओं या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीतस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः॥

॥ सा० मं० ब्रा० १।१।६॥

अर्थ :— (याः) जिन व्यवसायिनी स्त्रियों ने इस वस्त्र के सूत्र को (अकृन्तन्) काता है और (याः) जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत को (अवयन्) बुना है (या च) और जिन्होंने इसके सूत को (अतन्वन्) फैलाया है और जिन (देवीः) देवियों ने (तन्तून्) इस वस्त्र के सूतों को (अभितः) दोनों ओर से (ततन्थ) सूची कर्म से या तुरी आदि के व्यापार से गूथ कर फैलाया है (ताः देवीः) वे देवियाँ (त्वा) तेरे प्रति (जरसा) वृद्धावस्था पर्यन्त ऐसे ही वस्त्र (संव्ययस्व) पहनाती रहें। हे (आयुष्मति) प्रशस्त आयु वाली कन्ये ! (इदं वासः) इस वस्त्र को तू (परि-धत्स्व) पहन। इस मंत्र में पुरुषादिव्यत्यय छान्दस है।

(इस मंत्र का सामवेद मं० ब्रा० प्र० १ । खं० १ । मं० ५ में पाठ भेद है । अर्थ दोनों का एक ही है)

इस मंत्र को बोल के वधू को वर उप वस्त्र चादर रेशमी देवे । स्वयं भी उपवस्त्र को यज्ञोपवीत वत् धारण करे ।

वर अधो-वस्त्र पहिने

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टि रस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोष मभिसंव्ययिष्ये ।।

अर्थ :— हे सज्जनों ! अपने शरीर को आच्छादित करने के लिये प्रतिष्ठा के लिये और दीर्घ जीवन के लिए शरीर रूप धन की पुष्टि करने वाले सुन्दर वस्त्रों को मैं समावृत—अच्छे प्रकार धारण करूँगा क्योंकि बहुत धन पुत्रादि से संयुक्त होकर मैं वृद्धावस्था पर्यन्त जीवन की इच्छा रखता हूँ । ईश्वर कृपा करे कि मैं सौ वर्ष वृद्धावस्था पर्यन्त जीवन लाभ करूँ ।।

इस मंत्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और

वर का उपवस्त्र या दुपट्टा धारण करना

ओं यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ।।

अर्थ :— हे सज्जनों ! अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक मुझे यश के साथ ही मिलें । धनी और विद्वान् मुझे यश के साथ ही प्राप्त हों । मुझे ईश्वर यश का लाभ करावे और आप लोग आशीर्वाद दें कि मुझे यश प्रतिष्ठा प्राप्त हो, (यह वस्त्र पहिनाने की विधि पार० गृ० सू० में है)

इस मंत्र को पढ़ के वर द्विपट्टा धारण करे ।

कार्यकर्त्ता बड़े होम की तैयारी करे । कलश स्थापन तथा दृढ़ पुरुष नियुक्ति भी वरपक्ष की ओर से करावें ।

इस प्रकार वधू वस्त्र परिधान करके जब तक सम्हले तब तक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा सब सामग्री यज्ञ कुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे। और वर पक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के*—यज्ञ कुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो। कलश स्थापन कर जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो जाय तब तक बैठा रहे। और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड ले के कुण्ड के दक्षिण भाग में कार्य समाप्ति पर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे और वधू का सहोदर भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो वह चावल व जुआर की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमी पत्र युक्त धाणी की चार अञ्जलि एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। फिर कार्यकर्त्ता सपाट शिला जो कि सुन्दर चिकनी हो उसको तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञीय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के आसन जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनों को रखवाये।

वस्त्र धारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सम्मुख लावे और तत्पश्चात् उस समय वर और कन्या दोनों यह मंत्र उचारण करें।

पति और कन्या दोनों खड़े हुए मंत्र बोलें।

ओं समञ्जन्तु (१) विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुद्रेष्ट्री दधातु नौ॥१॥

---

* जल-कुम्भ को ग्रहण करना आदि सब विधि पारस्करादि गृह्य सूत्रों में पाई जाती है, ग्रन्थ के विस्तार भय से सब स्थानों में प्रमाण निर्देश नहीं किया, यह पूर्व भी लिख दिया है।

(१) इस मंत्र को बोलने के पश्चात् वर-वधू परस्पर कङ्कण बांधें ऐसा पारस्कर गृह्य सत्र के टीकाकार विश्वनाथ लिखते हैं।

अर्थ :— वर और कन्या बोलें-हे (विश्वेदेवा:) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगों! आप हम दोनों को (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नता पूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिए एक दूसरे को स्वीकार करते हैं कि (नौ) हमारे दोनों के (हृदयानि) हृदय (आप:) जल के समान (शम्) शांत और मिले हुए रहेंगे जैसे (धाता) धारण करने वाला परमात्मा सब में (सम) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है। वैसे ही हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे जैसे :- (समुदेष्ट्री) उपदेश करने हारा श्रोताओं से प्रीति करता है। वैसे (नौ) हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करें ॥१॥

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का **दक्षिण हाथ पकड़े हुए** :—

—: वर का मन्त्रोच्चारण :—

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा हिरण्यपर्णो वैकर्ण: स त्वा मन्मनसां करोतु असौ ॥२॥

॥ पा० गृ० सू० का० १ । क० ४ ॥

टिप्पणी— 'असौ' इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करें।

अर्थ :— हे वरानने ! (यत्) जैसे तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझको जैसे (पवमान:) पवित्र वायु वा जैसे (हिरण्यपर्णों, वैकर्ण:) तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पदार्थों और (दिशोऽनु) दिशाओं को प्राप्त होता है वैसे तू प्रेम पूर्वक अपनी इच्छा से मुझको प्राप्त होती हैं वा होता है उस (त्वा) तुझको (स:) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे और जो आप मन से मुझको (ऐषि) प्राप्त होते हो उस आपको जगदीश्वर मेरे मन के अनुकूल सदा रक्खे ॥२॥

इस मन्त्र को वर बोल कर उसको लेकर घर के बाहर मण्डप स्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें।

और फिर वर यह मन्त्र खड़े हुए ही बोले :—

पुनः दो मंत्रों का वर उच्चारण करे।

ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीर सूर्देव कामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥३॥

॥ ऋ मं० १० सू० ८५ मं० ४४ ॥

अर्थ :— हे वरानने (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करने हारी! जिसके (ओम्) रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुख स्वरूप और सब दुःखों दाता आदि नाम है। उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से तू (अघोरचक्षुः) प्रिय दृष्टि (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी (पशुभ्यः) सब पशुओं के सुखदाता (सुमनाः) परित्रभीः करण युक्त प्रसन्न चित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने हारी (स्योना) सुखयुक्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्य आदि के लिए (शम्) सुख करने वाली (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं की भी (शम्) सुख देने वाली हो वैसे ही मैं तेरा पति भी वर्ता करूँगा ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वः। सा न पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामुकामा वहवो निविष्ट्यै ॥४

यज्ञ की महिमार्थ एक परिक्रमा

इन चार मन्त्रों को बोलने के बाद दोनों वर वधू यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापित किये हुए

आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के बाम भाग में वर बैठ के वधू—

बधू की मंगल प्रार्थना

ओं प्र मेपतियानः पन्थाः कल्पतांशि वा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ।

॥ गोभि० गृ० सू० पृ० २ । का० १ सू० २० तथा सा० वे० म० ब्रा० ०प्र१ । ख० । मं० ८ ॥

अर्थ :— (मे) मेरे (पतियानः) पति का जो मार्ग है वैसा ही (पंथाः) मार्ग (प्रकल्पताम्) बने, जिससे कि मैं (शिवा) सुख पाती हुई (अरिष्टा) निर्विघ्न होकर (पतिलोकम्) सब के पति परमात्मा को (गमेयम्) प्राप्त होऊँ ।

पुरोहित नियुक्ति ।

तदनन्तर यथाविधि यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना (१) करे फिर

विवाह-यज्ञ से पूर्व आचमन ।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा । ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥
ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मंत्रों में प्रत्येक मंत्र से एक एक आचमन वर, वधू, पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके हाथ और मुख प्रक्षालन एक शुद्ध पात्र में करके उसे दूर रखवा दें । हाथ और मुख पोंछ कर यज्ञ कुण्ड में निम्नलिखित प्रकार से वर-वधू (२) मिल कर होम करें ।

---

(१) स्थापना = वरण करे ।

(२) वर घी व वधू सामग्री छोड़े ।

होम विधिः ।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवी व व्वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि ! देवयजनि ! पृष्ठेग्निमन्नाद मन्ना द्यायादधे ॥१॥

इस मंत्र से वेदी के बीच में अग्नि या प्रज्वलित कपूर रख कर उस पर छोटे छोटे काष्ठ रखे और अगला मंत्र पढ़ कर पंखे से अग्नि को प्रदीप्त करे।

ओं उद्‌बुद्‌ध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ँ् सृजेथा मयं च । अस्मिन्त्सधस्थें अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥२॥

पश्चात् अधोलिखित मंत्रों से आठ आठ अंगुल की तीन समिधायें घृत में भिगो कर अग्नि में चढ़ावे। एक एक मन्त्र से एक एक समिधा चढ़ावे।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। अस्मिन्हव्या जुहोतन स्वाहा ॥१॥ इदमग्नये इदं न मम।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृते तीव्रं जहोतन ॥२॥

अग्नये जात वेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥३॥

तथा अधोलिखित मंत्र से एक समिधा छोड़े—

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। वृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम ॥४॥*

तत्पश्चात् ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदसोनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धः वर्धय चास्मान्, प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेनाऽन्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥

इस मंत्र को पाँच बार बोल कर क्रमशः आहुति दे फिर अञ्जलि में जल लेकर अधोलिखित मंत्रों से वेदी के चारों ओर जल छिड़के—

---

* कहीं कहीं 'अभन्त इदम आत्मा' इत्यादि मन्त्र से पहिली समिधा चढ़ाते हैं—यह भी प्रचलित पद्धति है।

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—इससे पूर्व में
ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व—इससे पश्चिम में
ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व—इससे उत्तर में

ओं देवसवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पति र्वाचन्नः स्वदतु ॥

इस मंत्र से चारों ओर जल डाले।

नीचे लिखे मन्त्रों से दो आहुति देवे। एक वेदी के उत्तर भाग में दूसरी दक्षिण भाग में।

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम। इससे उत्तर भाग में।
ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्नमम। इससे दक्षिण भाग में।
निम्नलिखित दो मंत्रों से वेदी के मध्य भाग में दो आहुति दे।
ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्नमम।
ओं इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्नमम।

अधोलिखित मंत्रों से प्रातः काल यज्ञ करे। यहीं से सामग्री भी डालना आरम्भ करे।

ओं सूर्यो ज्योति र्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा।
एवं अधोलिखित मंत्रों से सायंकाल में हवन करना चाहिये ॥

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।
ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्र वत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा।
फिर अधोलिखित मंत्रों को बोल कर आहुति देनी चाहिये—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदग्नये प्राणाय इदन्नमम ।।
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदंवायवेऽपानाय इदन्नमम ।।
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदं आदित्याय व्यानाय इदन्नमम ।।
ओं भूर्भुवः रग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।
इदमग्नि वाय्वा दित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यहृदं न मम ।
ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।।
ओं यां मेधाः देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तयामामद्यमेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।
मेधां मे वरुणो ददातु मेधाग्निः प्रजापतिः । मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु में स्वाहा ।।
ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरै रंगै स्तुष्ट्वांऽसस्तनूभि व्यशेमहिदेवहितं यदायुः स्वाहा ।।
ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।।
इदम हम नृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ।।
ओं विश्वानि देव सवितुर्दुरतानि परासुव
यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ।
ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराण मेनो भूयष्ठान्ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ।
ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्—स्वाहा ।।
ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् ।
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे
अग्नये स्विष्ट कृते सुहुत हुते सर्व प्रायश्चिताहुतीनां
कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ।।
इदमग्नये स्विष्ट कृते इदन्न मम ।।
इस मन्त्र से विशेष शाकल्य या मिष्टान्न सहित घृत की आहुति दे ।

निम्नलिखित मन्त्रों से अष्टाज्याहुति दे ।

ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः ।

यजिष्ठो वह्नितमः शोशु चानो विश्वांद्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ।

इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्नमम् ॥१॥

पा० २० का० १ । क० २ । सू० ८ ॥

अर्थ :— हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् । तू (विद्वान्) हमारे सब कर्मों को जानने वाला है (देवस्य) दिव्य गुणों वाले (वरुणस्य) परमात्मा के (हेलः) अनादर से (त्वम्) तू (नः) हमको (अवयासिसीष्ठाः) पृथक् रख अर्थात् आप ऐसी कृपा करें जिससे हम ईश्वर की आज्ञानुकूल चलें (यजिष्ठः) तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हो और (वह्नितमः) हविरादि उपयोगी पदार्थों के प्राप्त कराने वाले हों और (शोंशुचानः) अत्यन्त तेज वाले हो । अतः तुम (अस्मत्) हम से (विश्वा, द्वेषांसि) सब द्वेष के कारण पापों को (प्रमुमुग्धि) अच्छी तरह से हटाओ ।

ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्याउषसोव्युष्टौ अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्नमम ॥२॥

॥ ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४ ॥

अर्थ :— हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् । (सत्वम्) पूर्वोक्त गुणों वाला तू (अती) अपने आगमन से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) हो और (अस्याः उषसः) इस प्रातःकाल के (व्युष्टौ) अग्निहोत्रादि कामों में (नेदिष्ठः) निकट हो (नः) हमारे (वरुणम्) आवरण करने वाले पाप को (अवयक्ष्व) नष्ट करो और (रराणः) यज्ञ करने के लिये अत्यन्त फल देने वाले आप (मृडीकम्) सुख करने वाले

इस हविः—शेष भाग को (वीह) स्वीकार कीजिये और (नः) हमारे (सुवहः) सुन्दर आह्वान से युक्त (एधि) हो ॥२॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके स्वाहा। इदंवरुणाय—इदन्नमम ॥३॥

॥ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १६॥

अर्थः—हे (वरुण) प्रशंसनीय राजन्! * (मे) मेरे (इमं) (हवम्) इस स्तुति समूह को (श्रुधि) आप सुनें (च) और (अद्य) आज यज्ञ दिन में (मृडय) हम सब को सुखी करें (अवस्युः) अपनी रक्षा को करता हुआ मैं (त्वाम्) आपकी (आचके) संमुख स्तुति करता हूँ ॥३॥

ओ तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह वोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा। इदं वरुणाय इदन्नमम ॥४॥

॥ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११॥

अर्थः—हे (वरुण) जगदीश्वर! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उसी आयु को (हविर्भिः) शाकल्य आदि से (यजमानः) यज्ञ करने वाला (आशास्ते) चाहता हूँ। (इह) इस यज्ञादि कर्म में (अहेडमानः) हमारा अनादर करता हुआ तू (वोधि) हमारी इच्छा को समझ। हे (उरुशंस ?) बहुतों से स्तुति करने के योग्य (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (मा प्रमोपीः) मत नष्ट कर ॥४॥

† ओं येते शतं वरुणः ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिर्नोअद्य सवितोत विश्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्नमम ॥५॥

---

* इस स्थान में ईश्वर व विद्वान् का भी ग्रहण हो सकता है।

† पाराशरादि संमत, ये दोनों शाखान्तरीय मन्त्र हैं।

अर्थ :—हे (वरुण) स्वीकार योग्य जगदीश्वर ! (ये ते) जो वे (शतम्) सैकड़ों और (ये सहस्त्रम्) जो हजारों (यनिया :) यज्ञसंबंधी (महान्तः) बड़े (पाशाः) प्रतिबन्धक रुकावट (वितताः) फैले हुए हैं। (तेभिः) उनसे (नः) हमको (अद्य) आज (सविताउतविष्णुः) सर्वोत्पादक और व्यापक आप और (विश्वे स्वर्काः मरुतः) सब अच्छे पूजनीय देवता विद्वान् लोग (मुञ्चन्तु) छुडावें ॥५॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्य मित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज ॐ स्वाहा । इदमग्नये अयसे— इदन्न मम ॥६॥

अर्थ :—हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (त्वम्) तुम (अयाः) बाहर और भीतर सर्वत्र स्थिर (असि) हो (च) और (अनभिशस्तिपाः) जिनके दोष न रहें ऐसे प्रायश्चितयोग्य पुरुषों के पालक हो (च) और (त्वम्) तुम (अयाः) कल्याणकारक हो यह बात (सत्यम् इत्) सच ही है। हे (अयाः) कल्याण कारक अग्ने! तुम (अयाः) हमारे आश्रय होकर (यज्ञम्) यज्ञ के साधन चरु आदि को जलादि देवताओं के लिए (वहासि) ले जाते हो इसलिए (नः) हमारे लिए (भेष जम्) दुखनाश रूप सुख को (धेहि) देओ ॥६॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवा धमं विमध्यमं श्रथाय । अथावय-मादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणायाआदित्याया ऽदितये च इदन्न मम ॥७॥

ऋ० म० १ । सू० २४ । म० १५॥

अर्थ :—हे (वरुण) स्वीकार करने योग्य ईश्वर (अस्मत्) हम लोगों से (अधमम्) छोटे और (मध्यमम्) मध्य दर्जे के (उत) और (उत्तमम्) ऊँचे दर्जे के (पाशम्) बन्धनों को (व्यवश्रथाय) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये। (अथ) और हे (आदित्य) अविनाशी ईश्वर ! (तव व्रते) तेरे आज्ञापालन रूपी व्रत में स्थित (वयम्) हमलोग

(अनागसः) अपराध रहित होकर (अदितये) मुक्तिसुख के लिए (स्याम) नियत होंवै ।।७।।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेत सावरेपसौ । मायज्ञ ँ हिं ँ सिष्टंमायज्ञ-पतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ।। इदं जात वेदोभ्यां—इदन्न मम ।।८।।

यजु० अ० ५ । म० ३ ।।

अर्थ :—(नः) हम लोगों के बीच में (अरेपसौ) पापरहित (समनसौ) समान मन वाले अर्थात् एक दूसरे के सहायक (सचेतसौ) समान बुद्धि वाले स्त्री पुरुष (भवतम्) हों । और वे दोनों (यज्ञम्) यज्ञ का (मा, हि ँ सिष्टम्) लोप न करें और (मा यज्ञपतिम्) यज्ञों के पालक को भी पीड़ा न पहुँचावें (अद्य) आज यज्ञ के दिन ऐसे ही स्त्री पुरुष (नः) हमारे लिये (शिवौ) शान्तरूप (भवतम्) हों ।।८।।

वधू द्वारा वर के दक्षिण स्कन्ध का स्पर्श ५ मन्त्रों को बोलते हुए ।

अष्टाज्याहुति देकर के प्रधान होम का प्रारम्भ करें । इस समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण कन्धे पर स्वर्श करके निम्नलिखित मंत्रों से आज्याहुति दे ।

'प्रधान होम-सम्बन्धी पांच आज्या हुति'*

ओं भूर्भुव स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ युवोर्ज्जमिष च नः । आरे वाधस्व दुच्छूनाँ स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ।

अर्थ :—हे (अग्ने) आग्ने । तू (आयूँषि) जीवनों को (पवसे) रक्षा करता है तू (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) बलको (च) और (इषम्) अन्नादि को (आसुव) प्राप्त कराओ । हमारे (दुच्छुनाम्) राक्षस विषैले

---

*तूष्णीं द्वितीये उभयत्र । आश्वलायन गृ० १ । क० ९ । सू० ८ ऐसे ही मौन होकर आहुति देने का अन्यत्र भी विधान है । इस समय कन्या वर का दक्षिण स्कन्ध स्पर्श करे ।

दृश्य तथा अदृश्य जीव जन्तुओं को हम से (आरे) दूर (वाधस्व) पीड़ित कर ॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः अग्निॠषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥२॥

अर्थः—(अग्निः) अग्नि (ॠषिः) सर्वत्रव्याप्त है (पवमानः) और शोधकहै (पाञ्चजन्यः) चारो वर्ण आश्रमों और तदितर जन एवं पांचों प्रकार के मनुष्यों में कार्यसाधक है (पुरोहितः) ॠत्विजादि से अपने सम्मुख इष्ट सिद्धि के लिए रक्खा जाता है। (तंमहागयम्) उस विद्वानों से स्तुति के योग्य अग्निसे हम (ईमहे) धनादि की याञ्चा करते हैं।

ॐ भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥३॥

ॠ० म० ९ सू० ६६। म० १९। २०। २१॥

अर्थ :—हे (अग्ने) अग्ने ! तू (स्वपाः) सुन्दर काम करने वाला है (अस्मे) हममें (सुवीर्यम्) अच्छे वल वाले (बर्चः) तेज को (पवस्व) प्राप्त कराओ। (मयि) मुझमें (रयिम्) धनादि को और (पोषम्) गवादि की पुष्टि को (दधत्) धारण करो ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्व जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहु मस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये— इदन्न मम ॥४॥

ॠ० म० १०। सू० १२१। म० १०॥

अर्थ :—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मन् (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेततादि को (न) नहीं (परिवभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (य त्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छां करें (तत्) उस उसकी कामना (नः) हमारी सिद्ध

(अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ।।४।।

ओं भुर्भूवः स्वः । त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं विभर्षि । अंजन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद् दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा । इद अग्नये इदन्नमम ।।

।। ऋ० मं ५। सू० ३ । मं० २ ।।

अर्थ :—हे (स्वधावन्) हविर्लक्षण अन्न के सम्पादक ! परमात्मन् ! (यत् त्वम्) जो तू (कनीनाम्) कन्या भगिनी आदि का भी (अर्यमा) नियम में रखने वाला (भवसि) है और तू सब जगत् को (गुह्यं, विभर्षि) गुप्त रूप से रक्षा करने वाला है यह बात (नाम) विद्वानों को प्रसिद्ध है। (यत्) जिन (दम्पती) स्त्री पुरुषों–पति और पत्नी को तू (समनसा) तुल्य मनस्क–एकचित्त (कृणोषि) शुभकर्म द्वारा करता है वे दम्पती (मित्रं न) मित्र की नाईं (सुधितम्) अच्छे प्रकार पोषक आपको (गोभिः) गौ के विकार भूत घृतादिकों से हवन द्वारा आपकी आज्ञा पालन करते हुये आपको (अञ्जन्ति) पूजित करते हैं:—

तदनन्तर 'राष्ट्रभृत्' यज्ञ का आरम्भ करे :—

राष्ट्रभृत् होम

ओं* ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् स्वाहा । इदमृता साहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय, इदन्न मम ।।१।।

य० अ० १८ । मं० ३८ ।।

ओं ऋताषाड्ऋत धामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्स रसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा । इदमोषधि म्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः इदन्न मम ।।२।।

अर्थ :—(ऋता षाड्) सत्य ब्रह्म की आज्ञा को सहन करने वाला

*इन्हीं बारह आहुतियों की 'राष्ट्रभृत' संज्ञा पार० गृ० सू० में है।

(ऋतधामा) ब्रह्म से ही प्राप्त है तेज जिसको (गन्धर्वः) वाणी को धारण करने वाला (अग्निः) अग्नि तत्व है (तस्य) उसी अग्नि के सम्बन्धी अर्थात् अग्नितत्व प्रधान (ओषधयः) ओषधियां जो कि (अप्सरसः) अन्तरिक्ष वा जल में व्याप्त है वे (मुदः नाम) सुख स्वरूप सुख देने वाली हैं यह बात विद्वानों में प्रसिद्ध है। (सः) वह अग्नि (नः) हमारे लिए (ब्रह्म, क्षत्रम्) ब्राह्मण और क्षत्रियों की (पातु) रक्षा करे। (तस्मै) उस अग्नि के लिये (स्वाहा वाट्) सुहुत हो और (ताभ्यः) उन औषधियों के लिये भी (स्वाहा) सुहुत हो। अप् शब्द निघंटु में अन्तरिक्ष और जल का भी वाचक है ॥१—२॥

ओं सँहितो विश्व सामा सूर्यो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् स्वाहा। इदं सँहिताय विश्व साम्ने सूर्याय गन्धर्वाय इदन्नमम ॥३॥

य० अ० १८। मं ३९॥

ओं सँहितो विश्व सामा सूर्यो गन्धर्व स्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवोनाम ताभ्यस्स्वाहा। इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्यो आयुभ्यः इदन्न मम ॥४॥

अर्थः—(संहितः) दिन और रात्रि की संधि करने वाला (विश्व सामा) संसार में शान्ति पहुँचाने वाला (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (सूर्यः) सूर्य है (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त (तस्य मरीचयः) उस सूर्य की किरणें (आयुवः, नाम) प्रसिद्ध है या मिली हुई हैं (सः) वह सूर्य। शेष पूर्ववत् ॥ ३।४ ॥

ओं सुषुम्णः सूर्य रश्मि चन्द्रमा गन्धर्वः। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् स्वाहा। इदं सुषुम्णाय, सूर्य रश्मये चन्द्रमसे, गन्धर्वाय इदन्न मम ॥५॥

॥ यजु० अ० १८ मं० ४० ॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसः

भेकुरयो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः इदन्न मम ॥

अर्थ :—(सुषुम्णः) अच्छे प्रकार सुख देने वाला (सूर्य रश्मिः) सूर्य की किरणें जिसमें पड़ती हैं ऐसा (गन्धर्वः) रश्मि को धारण करने वाला (चन्द्रमाः) चांद है। (तस्य) उसके सम्बन्ध से है। (नक्षत्राणि) नक्षत्र (भेकुरयः, अप्सरसः) प्रकाश को करने वाले होकर अन्तरिक्ष में व्याप्त है, यह वात (नाम) विद्वानों की प्रसिद्ध है। शेष पूर्ववत् ॥ ५—६ ॥

ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् स्वाहा। इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय इदन्न मम ॥७॥

म० अ० १८। मं० ४१ ॥

ओ३म् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्ज्जोनाम ताभ्यः स्वाहा। इदमद्भ्यो अप्सरोभ्य अग्भ्यः, इदन्न मम ॥८॥

अर्थ :—(इषिरः) मननशील (विश्व व्यचाः) सब जगह व्याप्त (गन्धर्वः) वाणी का वल देकर धारण करने वाला (वातः) वायु है (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (ऊर्जः) वल वा प्राणादि वायु (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं तथा (आपः) अन्यत्र भी व्याप्त हैं—शेष पूर्ववत् ॥ ७—८ ॥

ओ३म् भुज्यु: सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् स्वाहा। इदं भुज्यवे सुपर्णाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥९॥

॥ य० अ० १८ मं० ४२ ॥

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गंधर्व तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम ताभ्यः स्वाहा। इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः इदन्न मम ॥१०॥

अर्थ :—(मृत्युः) सब भूतों का पालक (सुवर्णः) शोभन ज्ञान से सम्पादित (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (यज्ञः) यज्ञ है

(तस्य) उसके सम्बन्ध में (अप्सरसः, दक्षिणाः) प्रसिद्ध कीर्ति को प्राप्त होने वाली दक्षिणा धर्मात्मा विद्वानों की दान भी (स्तावाः) स्तुति के योग्य है (नाम) यह विद्वानों को विदित है, शेष पूर्ववत् है । ९—१०॥

ओं प्रजापति विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः । सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् स्वाहा । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय इदन्न मम ॥११॥

ओं प्रजापति विश्वकर्मा मनो गन्धर्व स्तस्य ऋक् सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमृक्सामभ्योऽप्सरोभ्यः एष्टिभ्यः इदन्न मम ॥१२॥*

अर्थ :—हे (प्रजापतिः) प्रजा का पति (विश्वजर्मा) सब कार्यों को करने वाला (गन्धर्वः) वाणी की प्रेरणा करके धारण करने वाला (मनः) मन है (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (ऋक्सामानि) ऋग्वेद और सामवेद गानादि द्वारा (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं, वे ऋक् और साम ही (एष्टयः) ईश्वर से प्रार्थना के साधन हैं (नाम) यह विद्वानों में प्रसिद्ध है; शेष पूर्वतुल्य है ॥ ११—१२ ॥

इन बारह मंत्रों से बारह आज्याहुति देवे, तत्पश्चात् जयाहोम आरम्भ करे ।

जयाहोम की १३ आज्याहुतियाँ

ओं चित्तं च स्वाहा । इदं चित्ताय—इदन्न मम ॥१॥

अर्थः—(चित्तम्) चित्तज्ञान के आधार हृदय को 'मेरे लिये देवे' इस प्रकार अगले मंत्र की 'प्रायच्छत्' क्रिया को लेकर सर्वत्र कर लेना चाहिए ॥१॥

ॐ चित्तिश्च स्वाहा । इदं चित्त्यै—इदन्नमम ॥२॥

अर्थ—(चित्त हृदय की चेतना) मेरे० ॥२॥

---

* ये मन्त्र ६ ही हैं परन्तु उनका योग विभाग करके १२ आहुतियाँ दी जाती हैं ।

ॐ आकूतम् च स्वाहा । इदमाकूताय—इदन्नमम ॥३॥

अर्थः—(आकूतम्) कर्मोदय दे ॥३॥

ॐ आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै इदन्नमम ॥४॥

अर्थः—(आकूतिः) कर्मेन्द्रियों की प्रेरक शक्ति दे।

ॐ विज्ञातञ्च स्वाहा । इदं विज्ञाताय इदन्नमम ॥५॥

अर्थः—(विज्ञातम्) । शिल्प विज्ञान दे ॥५॥

ॐ विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै इदन्नमम ॥६॥

अर्थः—(विज्ञाति) शिल्प विज्ञान शक्ति दे ॥६॥

ॐ मनश्च स्वाहा । इदं मनसे—इदन्नमम ॥७॥

अर्थः—सुख दुःख के ज्ञान का भीतरी साधन दे ॥७॥

ॐ शक्वरीश्च स्वाहा । इदं शक्वरीभ्यः इदन्नमम ॥८॥

अर्थः—शक्वरीः मन की शक्तियाँ दे ॥८॥

ॐ दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय—इदन्नमम ॥९॥

अर्थः—(दर्श) दर्शेष्टि यज्ञ—अमावस्या का योग दे ॥९॥

ओं पौर्णमासं च स्वाहा । इदं पौर्णमासाय इदन्न मम ॥१०॥

अर्थः—(पौर्णमासम्) पूर्णिमा संवन्धी यज्ञ फल दे ॥१०॥

ओं वृहच्च स्वाहा इदं वृहते—इदन्न मम ॥११॥

अर्थः—(वृहत) बड़प्पन दे ॥११॥

ओं रथन्तरञ्च स्वाहा । इदं रथान्तराय—इदन्न मम ॥१२॥

अर्थः—(रथान्तर) साम विशेष दे ॥१२॥

ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छ दुग्रः पृतनाजयेषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः इहव्यो वभूव स्वाहा । इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय इदन्न मम ॥१३॥

अर्थः—(प्रजापतिः) परमात्मा ने (वृष्णे) यज्ञादि द्वारा मनुष्यों की इष्ट सिद्ध की वर्षा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (जयान्) जय देने वाले मंत्रों को (प्राऽयच्छत्) अच्छे प्रकार पूर्व से ही दे रखा है। जय मन्त्रों के प्रभाव से ही इन्द्र (पृतनाजयेषु) शत्रुओं की सेनाओं को

जीतने में (उग्रः) प्रचण्ड होता है। जीत के कारण ही (सर्वाः विशः) सब मनुष्य उसके प्रति (सम् अनमन्त) अच्छे प्रकार नमस्कार करते हैं, वा कर चुके हैं। (सः) वह जाननेवाला ही (उग्र) प्रचण्ड होता है। (सः इ) और वह (हव्यः) ग्रहण के योग्य हो चुका है वा होता है।*

प्रत्येक मन्त्र से एक एक करके जया होम की १३ तेरह आज्याहुति देनी चाहिए तत्पश्चात् "अभ्यातान होम" इन मंत्रों से करे:—

अभ्यातान होम की १८ आज्याहुति

ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदमग्नये भूतानामधिपतये। इदन्न मम ॥१॥

अर्थः—(अग्निः) भौतिक अग्नि (भूतानाम्) सब तत्वों वा पदार्थों में (अधिपतिः) मुख्य वा पदार्थों का रक्षक है (सः) वह (भी) मेरी (अवतु) रक्षा करे। (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ब्राह्मण—समूह में (अस्मिन् क्षत्रे) इस क्षत्रियों के समूह में (अस्याम् आशिषि) इस प्रार्थना में (अस्याम् पुरोधायाम्) इस आगे बैठी हुई कन्या के विषय में (अस्मिन् कर्मणि) इस हवनादि कर्म में (अस्याम् देवहूत्याम्) इस विद्वानों के आहवान बुलाने में रक्षा करे ॥१॥

ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिक्षा ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्या माशिष्वस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये इदन्नमम ॥२॥

---

* ये तेरह मन्त्र 'जया' मन्त्र कहलाते हैं। भर्तृहरि का मत है कि "स्वाहा" के योग में व्याकरणरीत्या चतुर्थी विभक्ति करके 'चित्ताय स्वाहा' इत्यादि रूप से मन्त्र बोलने चाहिये। परन्तु कर्काचार्यादि कहते हैं कि ये मन्त्र स्वरूप हैं देवता नहीं। अतः जैसे हैं वैसे ही बोले चतुर्थी विभक्ति न लगावे।

अर्थः—(ज्येष्ठानाम्) बड़े से बड़े पदार्थों में (इन्द्रः) सर्वैश्वर्यवाली विद्युत् (अधिपतिः) मुख्य हैं वा उनकी रक्षक हैं। शेषपूर्ववत् ॥२॥

ओं यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये—इदन्न मम ॥३॥

अर्थः—(यम) ऋतुही (पृथिव्याः अधिपतिः) इस सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥३॥

ओं वायुरन्तरिक्ष स्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं वायवे अन्तरिक्षस्याधिपतये—इदन्न मम ॥४॥

अर्थः—वायुःपवन (अन्तरिक्षस्य) आन्तरिक्ष लोक का (अधिपतिः) स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥४॥

ॐ सूर्यो दिवोधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये इदन्न मम ॥५॥

अर्थः—(दिवः) द्युलोक का (सूर्यः) सूर्य (अधिपतिः) स्वामी है शेष पूर्ववत् ॥५॥

ॐ चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्स्य देवहूत्यां स्वाहा। इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये इदन्न मम ॥६॥

अर्थः—(नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों का (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अधिपति) स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥६॥

ॐ बृहस्पतिः ब्रह्मणोऽधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं ब्रहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये—इदन्न मम ॥७॥

अर्थ :—हे (ब्रहस्पतिः) बड़ों का पति परक्ता (ब्रह्मणः) वेद का (अधिपतिः) स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥७॥

ओं–मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा । इदं मित्राय सत्या नामधिपतये– इदन्न मम ॥८॥

अर्थ :—(सत्यानाम्) सत्य पदार्थों का (मित्रः) सूर्यादि पदार्थ । शेषपूर्ववत् ॥८॥

ओं वरुणो ऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्था देवहूत्यां स्वाहा । इदं वरुणाग्रापामधिपतये, इदन्न मम ॥९॥

अर्थ :—(अपाम्) स्थूल जलोंका (वरुणः) स्वीकार योग्य सूक्ष्म जल शेष पूर्ववत् ॥९॥

ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्याँ देवहूत्याँ स्वाहा । इदं समुद्राय स्रोत्या नामधिपतये—इदन्न मम ॥१०॥

अर्थ :—(स्रोत्यानाम्) सोत से बहने वाले जलों का (समुद्रः) समुद्र शेष पूर्ववत् ।

ओं अन्न ँ साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां ँ स्वाहा । इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये इदन्न मम ॥११॥

अर्थ :—(साम्राज्यानाम्) चक्रवर्तियों के ऐश्वर्यों का (अन्नम्) अन्न ॥११॥

ओं सोम ओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मव्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्स्यां देवहूत्या ँ स्वाहा । इदं सोमाय, ओषधीनामाधिपतये इदन्न मम ॥१२॥

अर्थ :—(ओषधीनाम्) ओषधियों की (सीमा) सोमलता ॥१२॥

ओं सविता प्रसत्वानामधिपतिः स मात्वस्मिन् ब्रम्हण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा इदं सवित्रे प्रसवानाधिपतये इदन्न मम ॥१३॥

अर्थ :—(प्रसवानाम्) फल पुष्पादि का (सविता) सूर्य ॥१३॥

ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्या माशिष्यस्यां पुरो धायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा। इदं रुद्राय पशूनामधिपतये इदन्न मम ॥१४॥

अर्थ :—(पशूनाम्) पशुओं का (रुद्रः) व्याघ्रादि हिंसक जीवों को रुलाने वाला० ॥१४॥

ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्या माशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा। इदं त्वष्ट्रे रूपाणाम—धिपतये—इदन्न मम ॥१५॥

अर्थ:—(रुपाणाम्) द्रष्टव्य पदार्थों का (त्वष्टा) उत्तम शिल्पी०॥१५॥

ओं विष्णुः पर्वतानाधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहाः। इदं विष्णवे, पर्वतानामधिपतये इदन्न मम ॥१६॥

अर्थ :—(पर्वतानाम्,) मेघों का (विष्णु) यज्ञ ॥१६॥

ओं मरुतो गनानामधिपतयस्ते मावन्त्वास्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्याँ पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्या देवहूत्यां ँ स्वाहाः। इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः—इदन्न मम ॥१७॥

अर्थ :—(गणानाम्) समूहों के (मरुतः) देवताओं के नायक (ते) वे० ॥१७॥

ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहाइह मावत्वमस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्या माशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्याँ देवहूत्याँ ँ स्वाहा। इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततोमहेभ्यश्च इदन्न मम ॥

अर्थ :—(पितरः) पिता चाचा आदि (पितामहाः) पिता के पिता अर्थात् बाबा (परे अवरे) उत्कृष्ट कोटि और निम्न कोटि के (ततः)

और जो फैले हुए कुटुम्ब के लोग हैं वे तथा (तता महाः) उन लोगों में भी जो पूजनीय हैं वे। शेष पूर्ववत् ॥१८॥

इस प्रकार अभ्यातान होम की अट्ठारह आज्याहुति दिये पीछे:—

आठ विशेष आज्याहुति दे

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा नुमन्यतां यथेयं स्त्री—पौत्रमघन्नरोदात्स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम ॥१॥

अर्थ:—(देवतानां, प्रथमः) देवताओं में मुख्य (मृत्युपाशात् मृत्युपाशमत्ति भस्मीकरोतीति) अकाल मृत्यु के बन्धन को भस्म करने वाला (अग्निः) अग्निदेव (आ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों, और (सः) वह अग्निदेव (अस्मै) इस कन्या के लिये (प्रजाम्) सन्तान को (मुञ्चतु) देवे (तत्) उस प्रजादान का (अये वरुणः, राजा,) यह सब श्रेष्ठ परमात्मा रूपी राजा (अनुमन्यताम्) पश्चात् सहायक हो (यथा) जिस प्रकार से कि (इयम् स्त्री) यह स्त्री (पौत्रम्, अघम्) पुत्र संबंधी दुःख को (न, रोदात्) न रोवे न प्राप्त हो ॥१॥

ओं इमामग्नि स्त्रायतां गहिपत्यः प्रजा पश्यै नयतु दीर्घआयुः। अशून्योपस्था जीवतमस्तु माता पौत्रमा नन्दमभि विबुध्यतामियं स्वाहा। इदमग्नये। इदन्न मम ॥२॥

अर्थ:—(गाहपत्येः) गृहस्थ सम्बन्धी अग्निहोत्र की (अग्नि) इमाम् इस कन्या की (आयताम्) ईश्वर करे कि रक्षा करे। (अस्मै) इस स्त्री की (प्रजाम्) सन्तान को परमात्मा (दीर्घम्, आयुः) बड़ी आयु (नयतु) प्राप्त करा ले और वह स्त्री (अशून्योपस्था) वन्ध्यात्व दोष से रहित होकर (जीवताम्) जीने वाले सन्तानों की (माता अस्तु) माता हो। और (इयम्) यह स्त्री (पौत्रम्, आनन्दम्) पुत्र सम्बन्धी आनन्द को (अभि, विबुध्यताम्) प्राप्त होकर विशेष रूप से जाने ॥२॥

ओं स्वस्तिनोऽग्ने दिव आपृथिव्याः विश्वानि धेह्ययथा यजत्र। यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रं स्वाहा इदमग्नये—इदन्नमम।

अर्थ :—हे (यजत्र) यज्ञ करने की रक्षा करने वाले (अग्ने) अग्निदेव (नः) हमारे (विश्वानि) सब कर्मों को जो कि (अयथा) अन्यथा-प्रतिकूल हुए हैं, उनको (स्वस्ति) सम्पूर्ण अनुकूल करके (धेहि) स्थापन करो। और (दिवः, आ) आकाश लोक तक (पृथिव्याः आ) पृथिवी तक (यत्) जो (महि) महिमा महत्व है (तत्) उसे (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) रक्खो और जो (अस्याम्) इस पृथ्वी में (जातम्) पैदा हुआ (चित्रम्) नाना प्रकार का (द्रविणम्) धन है। उसे और जो (दिवि) आकाश लोक में (प्रशस्तम्) श्रेष्ठ वस्तु है, उसे हम लोगों में स्थापित करो ॥३॥

ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्यद् धेह्यजरन्न आयुः। अपैतु मृत्युरमृतं म आगा द्वैवस्वतो नो अभयं कृण्णोतु स्वाहा। इदं वैवस्वताय—इदन्नमम ॥४॥

अर्थ :—हे परमात्मन्! आप (सुगं, पन्थाम्)सुख से प्राप्तव्य मार्ग का (प्रदिशन् तु) हमारे मन में उपदेश करते हुए ही (नः) हमको (एहि) प्राप्त हों। और हमें (ज्योतिष्मत्) प्रकाश युक्त दोष रहित (अजरम्) जरा वृद्धावस्था के विकारों से रहित (आयुः) जीवन को (धेहि) दीजिए। (मृत्युः) आयु का प्रतिबन्धक मृत्युः (अप एतु) हमसे हट जावे। (मे) मेरे लिये (अमृतम्) मोक्ष (आ आगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो। (वैवस्वतः) सूर्य के जैसा आपका प्रकाश (नः) हमें (अभयम्) भय रहित (कृणोतु) करे ॥४॥

ओं परंमृत्यो अनुपरेहि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा। इदं मृत्यवे इदन्न मम् ॥५॥

अर्थ :—हे (मृत्यो ?) मृत्यु के अधिष्ठातृदेव ! (यत्र) जहाँ किन्हीं (नः) हम लोगों के बीच में (अन्यः) दूसरा (देवयानात् इतरः) विद्वानों के गन्तव्य मार्ग से पतित हुआ पुरुष है । उसका (परंपन्थानम्) द्वितीय लोक के (अनु) समुद्र (पराइहि) हमसे पराङ्गमुख करके ले जाओ । (चक्षुष्मते शृण्वते) बिना आँख और कान के देखने और सुनने वाले (ते) तुझसे सन्तान को (मा रीरिषः) मत नष्ट कर (उत्) और (वीरान्) देश के वीरों को भी मत नष्ट कर ।।५।।

ओं द्योस्ते पृष्ठं रक्षतु दायु रूरू अश्विनौ च । स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावास मः परिधानात् बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदन्न मम ।।६।।

अर्थ :—हे कन्ये ! (ते पृष्ठम्)तेरे पृष्ठ भाग को (द्यौः) द्युलोकस्थ सूर्य (रक्षतु) रक्षा करे (च) (अश्विनौ) विद्वान वैद्य (वायुः) घातादि के रोग से (अरु) तेरे अर्वादि नीचे के प्रदेशों की रक्षा करे । (आवाससः परिधानात्) सभ्यतापूर्वक वस्त्र पहिनने आदि के पूर्व (ते स्तनन्धयः पुत्रान्) तेरे दूध पीते बालकों की (सविता) उत्पादक पिता रक्षा करे (पश्चात्) पीछे से उन बालकों की (वृहस्पतिः) गुरुकुल का आचार्य और (विश्वेदेवाः) देश के सब विद्वान लोग । (अभिरक्षन्तु) चारों ओर से रक्षा करें ।।६।।

ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु । मा त्वं रुदत्पुर आबधिष्ठा जीव पत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजां सुमनस्य मानां स्वाहा । इदमग्नये इदन्न—मम ।।७।।

अर्थ :—हे कन्ये ! (निशि) रात्रि में (ते गृहेषु) तेरे घरों में (घोषः) आर्तनाद दुख देने वाले शब्द (मा उत्थात्) ईश्वर करे कि न उठें । (त्वत्) तुझे धर्मचारिणी से (अन्यत्र) अधर्मियों के यहाँ स्त्रियाँ (रुदत्यः) रोती हुई (माविशन्तु) न सोवें । अपने घर में अपने आश्रित भृत्यादिकों को (मा० आवधिष्ठाः) मत मार (जीवपत्नी) जीवित

पति का होती हुई (पतिलोके) पति के घर में (विराज) सुशोभित हो (सुमनस्यमानाम्) सुप्रसन्नचित्त (प्रजाम्) अपनी संतति को (पश्यन्ती) देखती हुई तू सुशोभित है ॥७॥

ओं अप्रजस्यं पौत्रमत्यं पाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥८॥

अर्थ :—हे कन्ये ! तेरे (अप्रजस्यम्) पुत्र शून्यता दोष को और (पौत्रमर्त्यम्) पुत्र सम्बन्धी दुःख को (उतवा) अथवा (पाप्मानम् अघम्) पाप रूप व्यसन को और (द्विषद्भ्यः) द्वैष करने वाले अधर्मियों से होने वाले (पापम्) बन्धन को (शीर्ष्णः स्रजम्-इव) मस्तक से माला को जैसे उतार देते हैं वैसे ही मैं (प्रतिमुञ्चामि) दूर हटाने की प्रतिज्ञा करता हूँ ।*

प्रत्येक मंत्र से एक एक करके आठ आज्याहुति देवे फिर—

व्याहृति आहुतियाँ दें

(१) ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नेय इदन्न मम ॥

अर्थ :—अग्नि रूप ईश्वर के लिये यह आहुति है ।

(२) ओं भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे इदन्नमम ।

अर्थ :—वायु की तरह व्यापक ईश्वर के लिये० ।

(३) ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय इदन्नमम ।

अर्थ :—आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिये० ।

---

* यहाँ पार० गृ० सूत्रकार का मत है कि पाँच आहुतियाँ पूर्व मन्त्रों से दी जावें । गोभि० गृ० प्र० २ । का० १ । सू० २४ का मत है कि छः आहुतियाँ दी जावें परन्तु सामवेद मं० ब्रा० प्र० १ । ख० १ में ये मन्त्र आठ ही आये हैं—प्रकरण भी एक ही है इससे ऋषि ने आठ आहुतियाँ देना लिखा है ।

(४) ओं भूर्भुवः स्वरग्नि वारवादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्नि-वारवादित्येभ्यः इदं न मम।

पार० का० १। कं० ५। सू० ३, ४॥

अर्थ :—पूर्वोक्त सर्वगुण सम्पन्नों के लिये०।

इन चार मंत्रों से चार आज्याहुति देवे। ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई बधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वामहस्त से वधू के दाहिने हाथ का चत्ता ऊपर को उचावे और अपने दक्षिण हाथ से वधू की उठाई हुई दक्षिण हस्तांजलि को अंगुष्ठ सहित अपने हाथ से ग्रहण करके वर निम्नस्थ प्रतिज्ञा मन्त्रों को पढ़े :—

मूल विवाह का आरम्भ
अथवा
पाणिग्रहण के छः मंत्र

इस क्रिया में वर खड़ा रहे इन मन्त्रों को वधू भी मन मन में बोलती चले—अर्थ भिन्न-भिन्न है।

ओं गृभ्णामिते सौभगत्वाय हस्तंमया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥१॥

॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३६॥

अर्थ :—हे वरानने! जैसे मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूँ। तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरा अवस्था को प्राप्त सुखपूर्वक (आसः) हो तथा हे वीर! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आपके हस्त को ग्रहण करती हूँ। आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न अनुकूल रहिए आपको मैं और मुझको आप आज से और पति पत्नी भाव करके प्राप्त हुए हैं (मम) सकल ऐश्वर्य युक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत का

उत्पत्ति का कर्त्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभी मण्डप में बैठे हुये विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रम कर्म के लिये (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं। आज से मैं आपके हाथ और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं। कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे।* ॥१॥

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृह पतिस्तव ॥२॥

अथर्व का० १४। अ० १। मं० ५२

अर्थ :—हे प्रिये (भगः) ऐश्वर्य युक्त मैं (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता हूँ तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे (हस्तम्) हाथ को (अभ्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूँ (त्वम्) तू (धर्मणा) धर्म से मेरी पत्नी या मेरी भार्या (असि) है और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति हूँ। हम दोनों मिलके घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण, व्यभिचार है उसको कभी न करें जिससे घर के सब काम सिद्ध हों उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे ॥३॥

ओं ममेय मस्तु पोष्या मह्यं त्वाऽदाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति ! शं जीव शरदः शतम् ॥३॥

अथर्व का० १४ ।अ० १। मे ५३॥

अर्थ—हे अनघे (वृहस्पतिः) सब जगत् का पालन करने वाले परमात्मा ने जिस (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तू (मम) मेरी पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो,

---

* गृभ्णामि के ऊपर आपस्तम्ब गृ० सू० ख० ४। सू०। ५ में लिखा है कि वधू का हाथ पकड़ कर इन चार मंत्रों को बोले परन्तु गोभिल गृ० सू० प्र० २। आ० २ सू० १६ में इन छः मंत्रों को बोलने का विधान है, तदनुसार यहाँ छः मन्त्र लिखे हैं।

हे (प्रजावति ?) तू (मया पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) ऋतु अथवा सौ वर्ष पर्यन्त (शं जीव) सुखपूर्वक जीवन धारण कर।

वधू भी इसी तरह से वर से प्रतिज्ञा करावे हे—भद्र वीर ! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो मेरे लिए आपके बिना इस जगत् में दूसरा स्वामी पालन करने वाला इष्टदेव कोई नहीं है, न मैं आपसे अन्य दूसरे किसी को मानूँगी जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी स्त्री से प्रीति न करोगे—वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीति भाव से न वार्ता करूँगी आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से जीवन धारण कीजिए।

ओं त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषाः कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तांप्रजया ।।५।।

अथर्व० का० १४।अ०१।मं० ५४।।

अर्थ :—हे शुभानने ! जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में उसकी तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दम्पति होते हैं। (त्वष्टा) जैसे बिजली सबमें व्याप्त हो रही है वैसे ही हे शुभे ! तू मेरी प्रसन्नता के लिए (वासः) सुन्दर वस्त्र और आभूषण तथा (कम्) सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे। जैसे—(सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने हारा परमात्मा (च) और जो (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त है वह (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस (नारीम्) मुझ नर की स्त्री को (परिधत्ताम्) वस्त्र से आच्छादित शोभायुक्त करें, वैसे मैं भी (तेन) इस सबसे (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुझको वस्त्र और भूषणादि से सुशोभित रक्खूँगा। तथा हे प्रिय ! मैं भी आपको इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित सानन्द अनुकूल प्रियाचरण करके (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूँगी ।।४।।

ओं इन्द्राग्नी द्यावा पृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा। वृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ।५।।

अथर्व० का० १४। अ० १। मं ५५।।

अर्थ :—हे मेरे सम्बन्धी लोगो ! जैसे (इन्द्राग्नी) बिजली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (ऊभा) दोनों (वृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी मनुष्य (ब्रह्म) सबसे बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा और सोम-लतादि ओषधिगण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं। जैसे वे—(इमाम् नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं : वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) बढ़ाया करो। तथा मैं भी इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूँगा। वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस अपने पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूँगी। जैसे इन्द्र व अग्नि दोनों मिल के प्रजा बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल करके गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें।५।।

ओं अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम्। न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् ।।६।।

अथर्व० का० १४। अ० १। मं० ५३।।

अर्थः—हे कल्याण क्रोडे ! जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्या) इस तेरे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त करता हूँ और इसमें प्रेम द्वारा व्याप्त होता हूँ। वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझमें प्रेम से व्याप्त हो के अनुकूल व्यवहार को (वेदद्धि) प्राप्त होवे। जैसे मैं (मनसा) मन से भी इस तुझ वधू के साथ (स्तेयम्) चोरी को (उदमुच्ये) छोड़ देता हूँ और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (अद्मि) भोग नहीं करता हूँ। (स्वयम्) आप (श्रन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी

(वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता हूँ। वैसे (इत्) ही यह वधू भी किया करे इसी प्रकार वह भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से बर्ताव करूँगी ॥६॥

केवल सूचनार्थ एक परिक्रमा

वर इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के पश्चात् वधू की हस्ताञ्जलि को अपने हाथ से पकड़ के उठावे और वह कलश पुरुष जो कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापित किया था, वही दो पुरुष जो कलश व दण्ड के पास बैठे थे दोनों वर-वधू के साथ-साथ उसी कलश को ले के मण्डपके बाहर बाहर चलें। यज्ञ कुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करें—

नोट:—इस प्रदक्षिणा के समय कलश वाला पुरुष मण्डप के बाहर बाहर चलेगा। फिर—

* **ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहं सामाऽहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेते दधावहै प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् ॥७॥**

अथर्व का० १५। अ० २ सं० ७१।

---

* विशेष:—मूल संकार विधि में ये शब्द हैं कि "इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके, इत्यादि पर इस वाक्य में (दोनों) के स्थान में (वर) शब्द भी होना चाहिए। उसका कारण यह है कि वर मूलमन्त्र में अपने की (द्यौः) (और वधू को 'पृथ्वी' की उपमा दे रहा है। फिर अपने को (सामवेद) और वधू को ऋग्वेद की उपमा दे रहा है। "द्यौः" से भाव पुरुष शक्ति के बोधक सूर्य का और पृथ्वी से आशय स्त्री शक्ति से है। यदि स्त्री भी इस मंत्र को पढ़ेगी तो वह अपने आपको सूर्य और पति को पृथ्वी रूप कहेगी जो परस्पर विरुद्ध हो जावेगा। इसलिए यह मन्त्र वर के ही बोलने का है।

उक्त सात प्रतिज्ञा के बोधक मंत्र हैं

अर्थः—हे वधू। जैसे—अहम् (मैं) (अमः) ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तेरा हाथ ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूँ। वैसे (सा) वह (त्वम्) तू ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण करने वाली (असि) है। जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझको (अमः) ग्रहण करता हूँ वैसे (सा) वह मेरे से ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझको भी ग्रहण करती है। (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशसित (अस्मि) हूँ। हे वधू ? तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशसित है (त्वम्) तू (पृथिवी) के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने वाली है, और मैं (द्यौः) वर्षा करने वाले सूर्य के समान हूँ वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) उत्पन्न पुत्रादि के भार को मिलकर वहन करें (वहून्) बहुत से (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दा वहै) प्राप्त होवें (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरावस्था के अन्त तक जीवनयुक्त (सन्तु) रहें (संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) एक दूसरे में रुचियुक्त (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार से कार्य करते हुये (शतम्) सौ (शरदः) शरद अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें और (शतम् शरदः) सौ वर्षपर्यन्त प्रिय वचनों को (श्रृणुयाम) सुनते रहें ॥७॥

इन मन्त्रों से प्रतिज्ञा करने के पश्चात् वर, वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण और समीप में जाकर उत्तराविमुख खड़ा रह के वधू की दक्षिणाञ्जलि अपनी दक्षिणाञ्जलि से पकड़ के दोनों खड़े रहें—

ध्यान रहे शिलारोहण में वर कन्या के दक्षिण ओर रहे और लाजा होम में फिर कन्या के वाम भाग में वर होगा, और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश लेके बैठा रहेगा पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल या ज्वार को धाणी (खीलें) जो सूप (छाज) में रक्खीं थीं उनको बायें हाथ में लेकर दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर—

शिलाऽऽरोहणम्

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतोऽबवाधस्व पृतनायतः ॥१॥

पार० का० १। कं० ॥

अर्थः—हे देवि ! (इमम् अश्मानम्) इस पत्थर के ऊपर (आरोह) चढ़ और (अश्माइव) इस पत्थर के तुल्य (त्वम्) तू धर्म कार्य में (स्थिराभव) दृढ़ हो । (पृतन्यतः) पृतनांसंग्राममिच्छन्ति पृतन्यन्ति तान् पृतन्यतः) कलहकारियों को (अभि) आक्रमण करके दबा करके (तिष्ठ) स्थित हो और (पृतनायतः)—पृतनाभिर्यतन्ते इसी पृतनायत स्तान् उन जन समूहों को लेकर लड़ाई के लिये यत्न करने वालों को भी (अब) नीचा करके (बाधस्व) पीड़ित कर—भग्नोद्यस्म बना ॥१॥

इस मंत्र को बोले फिर वधू और वर कुण्ड के समीप आकर पूर्वाभिमुख खड़े रहें और यहाँ वधू दक्षिण ओर रहके अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि को वर की हस्ताञ्जलि पर रक्खे फिर वधू की माँ व भाई जो बायें हाथ में धाणी का सूप पकड़ के खड़ा हो वह (धाणी) का सूप भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देकर जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्तांजलि में प्रथम थोड़ा घृत सेचन करके पश्चात् प्रथम सूप में से दाहिने हाथ की अञ्जलि से दो बार लेके वर और वधू की एकत्र की हुई अञ्जलि में धाणी डाले पश्चात् उस अंजलिस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सेचन करे पश्चात् उस वधू की अञ्जलि को अपनी हस्ताञ्जलि के द्वारा आगे से नमा के—

विवाह का मुख्य अंग लाजा होम

यह मन्त्र कन्या बोले :—

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत् । स नो अर्यमादेवः प्रेतो मुञ्चतु माप तेः स्वाहा । इदमर्यम्णे अग्नये इदन्न मम ॥१॥

॥ पार० का० १। कं० ६॥

अर्थः—कन्या की उक्ति (कन्याः) कन्यायें (अर्यमवम्) न्यायकारी नियन्ता (अग्निम, देवम्) जिस पूजनीयदेव ईश्वर की (अयक्षन्त) पूजा करती हैं। (सः) वह (अर्यमादेवः) न्यायकारी दिवास्वरूप परमात्मा (नः) हमको (इतः) इत विह कुल से (प्र—मुञ्चतु) छुड़ावे और (पतेः) पति के साहचर्य से (मा) न छुड़ावे ॥१॥

ओं इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥२॥

॥ पार० का० १। क० ६ ॥

अर्थः—(लाजान्) भुने हुए चावल खीलों को (आयपन्तिका) अग्नि में छोड़ने वाली (इयं नारी) यह स्त्री (उपब्रूते) पति के समीप कहती है कि (मे पतिः) मेरा पति ईश्वर कृपा से (आयुष्मान् अस्तु) दीर्घजीवी हो और (मम) मेरे (ज्ञातयः) कुटुम्ब के लोग (एवन्ताम्) धनधान्यादि से वढ़ें ॥२॥

ओं इमान् लाजानावपा कमऽनौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च सवननं तदग्नि रनु मन्यता मियं स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम* ॥३॥

॥ पा० का० १। क० ६॥

अर्थ :—हे पते ! (इयम्) यह मैं (तव) तेरी (समृद्धिकरणम्)

---

*—जहाँ-जहाँ विवाह की पूर्व विधि में पता नहीं दिया है वहाँ-वहाँ यह समझ लेना चाहिए कि यह मूल ग्रन्थोक्त समस्त विधि पार० गृ० सू० प्रथम काण्ड तथा उसके भाष्याद्यनुसार है।

टिप्पणीः—सूप में धान और शमी को डालकर हवन करने का जो विधान है उसमें शमी और खीलों का डालना अति हितकारक है कारण कि भावप्रकाश में लिखा है कि 'शमी तिक्ता कटुः शीता कसषया रोचनी लघुः। "कफ का सभ्रमिश्वास कुष्ठार्शः कृमिजित्स्मृता"। शमी कटु, चरपरा, शीतल, कषैला रुचिकारक हल्का है तथा कफ खांसी, श्वास, श्रम, कोढ़, बवासीर और कृमि रोग को दूर करता है—

वृद्धि के लिए (इमान् लाजान्) इन खीलों को अग्नि में (आ वपामि) छोड़ती हूँ। (मम) मेरा (तुभ्यम् च) और तेरा (संवननम्) परस्पर अनुराग हो (तत्) उसमें (अग्निः) पूजनीय परमात्मा (अनुमन्यताम्) सहायक हों ॥३॥

इन उत्तर के तीन मंत्रों में एक एक मंत्र को वधू बोले पुनः एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी धाणी की आहुति तीन बार प्रज्ज्वलित ईंधन पर देवे—फिर वर

हस्ताञ्जलि पकड़ने का मन्त्र

ओं सरस्वति* प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। शस्यां भूत ँ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥१॥

पा०। का० १। कं० ७।

अर्थ :—(सुभगे!) सुन्दर ऐश्वर्य वाली! (वाजिनीवति) अन्नादि संपत्ति वाली! हे (सरस्वति) वाणी आदि पदार्थों की कारणीभूत प्रकृति! (इदम्) इस हवनादि कर्म की (प्र, अव) अच्छे प्रकार रक्षा कर। (अस्य, विश्वस्य, भूतस्य) इस दृश्यमान सब पृथिव्यादि की (याम् त्वा) जिस तुझको (अग्रतः) स्थूल सृष्टि के पूर्व कारण रूप से विद्यमान (प्रजायाम्) उत्पादन करने वाली को विद्वान लोग कहते हैं। (यस्याम्) जिस तुझमें (भूतम्) पृथिव्यादि (समभवत्) उत्पन्न हुआ है और (यस्याम्) जिस तुझ में (इदम्, विश्वम्, जगत्) यह सब जगत् ही उत्पन्न होकर विद्यमान है (अद्य) आज से (ताम्) उसी तेरे प्रति

खीलों के गुण-खील मधुर, शीतल, हलकी, अग्निदीपन, अल्प मूत्र लाने वाली, रक्ष, लकती पित्त कफ, वमन अतिसार दाह रुधिर विकार, प्रमेह, मेदारोग, और तृष्णा को दूर करती है। (अभिनव निघण्ट)।

* पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार यह मंत्र शिलारोहण करवाते समय वर को बोलना चाहिए।

(गाथाम्) गुण, प्रभाव, स्तुति का (गास्यामि) गान किया करूँगा (या) जो गाथा सुनने पर (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के लिए (उत्तमम् यशः) अच्छी कीर्ति को देगी ।।१।।

प्रदक्षिणा के समय बोलने के मंत्र वर पढ़े

इस मंत्र को बोल के अपने दाहिने हाथ की हस्ताञ्जलि से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़ के वर निम्नलिखित दो मन्त्र बोलता हुआ यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा तीन बार करे।

ओं तुभ्यमग्रे पर्य वहन्त्यसूर्या वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ।।१।।

।। पार० गृ० सू० का० १ ।।

अर्थ:—हे (अग्ने) पूजनीय परमात्मन्। (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए— तुम्हारी ही परिचर्या के लिए (अग्रे परि, अवहन्) पूर्व वा प्रधान रूप से इस कन्या को स्वीकार किया है वह कन्या (सूर्याम्) सूर्य की दी हुई शोभा को (बहतु) प्राप्त हो और (सह) साथ ही (ना) इसका पतिरूप पुरुष भी प्रतिष्ठादिजन्य शोभा को प्राप्त हो। (पुनः) कालान्तर में (प्रजया सह) पुत्रों के साथ (पतिभ्यः) मुझ पति के लिए (बहुवचन मार्थम्) (जायाम्) भार्यात्व को प्राप्त हुई इस कन्या को (दाः) सौभाग्य दीजिए सन्धिरार्षः ।।१।।

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमपदीक्षा मयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवाति गाहेमहि द्विषः ।।१।।

गो० गृ० सू० प्र० २। का० २ सू० ८। मं० ब्रा० २।५।।

अर्थ:—(कन्यला) यह कन्या (पितृभ्यः) पिता भ्राता आदि को (अप) छोड़कर (पतिलोकम्) पति के गृह के प्रति (पतीयम्) पति सम्बन्धी (दीक्षाम्) नियम को (अयष्ट) स्वीकार कर चुकी है (उत) और (कन्या) यह कन्या (त्वया) उससे भिन्न मुझ पति व्यक्ति के साथ ही सर्वदा रहे, जिससे कि (वयम्) हम मिलकर (उदन्याः, धारा, इव)

जल की वेगवाली धाराओं की नाईं जल की जैसे प्रबल धाराएँ अपने सम्मुख आने वाले तृणादि को बहाकर ले जाती है वैसे ही (द्विषः) कामादि शत्रुओं को (अति) उल्लंघन करके पश्चात् (गाहेमहि) विलोडन करें—दबावें ।।२।।

नोट :—लाजा होम के पीछे की इसी परिक्रमा को मंगल फेरा कहते हैं और ऐसे चार फेरे होते हैं ।

तदनन्तर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें और सब मिलके चार परिक्रमा करें, अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा खड़े रहके उक्त रीति से चार बार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहें पश्चात् वधू की माँ अथवा भाई उक्त रूप से तिरछा करके उसमें बाकी रही हुई धारणी को वधू की हस्तांजलि में डाल देवे—पश्चात् वधू—

मौन परिक्रमा

ओ भगाय स्वाहा ।* इदं भगाय इदन्न मम ।।

पार० गृ० सू० का० १। क० ७। सू० ५।।

अर्थ :—(भगाय) ऐश्वर्य के लिए ।

शेषाहुतियाँ

इस मन्त्र को बोलके प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे—पश्चात् वर, वधू को दक्षिण भाग में बैठाकर कुण्ड के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के—

---

* शिलारोहण, लाजाहोम, तथा परिक्रमा के मंत्र प्रारम्भ से तीन फेरों तक पढ़ने चाहिए ।

चौथे फेरे में 'भगाय स्वाहा' बोलकर मौन परिक्रमा का विधान है इस परिक्रमा में हस्तग्रहण व शिला रोहण न करें । परिक्रमा के समय ग्रन्थिबन्धन आचारानुसार कर सकते हैं, पर स्वामी जी नहीं मानते ।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्नमम ॥

॥ पार० गृ० सू० का० १। क० ७। सू० ५॥

अर्थ :—(प्रजापतये) प्रजा के पति—परमात्मा के लिए।

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे। तत्पश्चात् एकान्त में जाके वधू के बँधे हुए केशों को वर—

एकान्त में वधू को धैर्य देना

तत्पश्चात् एकान्त में जा के वधू के बँधे हुए केशों को वर इन दो मन्त्रों से छूए—

ओ प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टान्त्वा सह पत्या दधामि ॥२॥

ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० २४।

अर्थ :—हे वधू! (येन) जिस बन्धन से (सुशेवः) शोभन सुख सम्पन्न (सविता) उत्पादक मातृजन (त्वा) तुझे (अवध्नात्) बाँध चुका है (वरुणस्य पाशात्) उसी श्रेष्ठ स्त्रीजन के लिए केशों के बन्धन से (त्वा) तुझे (प्र-मुञ्चामि) अच्छे प्रकार छुड़ाता हूँ और (ऋतस्य योनौ) यज्ञ के स्थान में और अन्य (सुकृतस्य) सुन्दर कार्यों के (लोके) स्थान में (अरिष्टाम् त्वा) उपद्रव रहित तुझे (पत्या सह) मैं पतिभाव के साथ (दधामि) पोषण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ॥१॥

ओं प्रेंतो मुंचामि नामुतस्सुवद्धा ममुतस्करम् यथेयमिन्द्र मीढ़वः सुपुत्रा सुभगा सती* ॥२॥

॥ऋक० मं० २' सू० ८५ मं० २५॥

अर्थ :—हे (इन्द्र) (मीढ्वः) ऐश्वर्य वाले वीर्यसेक्ता विवाहित पुरुष! (यथा) जैसे (इयम्) यह कन्या (सुभगा) अच्छे ऐश्वर्य वालों

---

* इन दो मंत्रों से आश्वलायन गृह्य कारिकाकार केशों का खोलना ही मानते हैं, इन दोनों मंत्रों से वर वधू के केश जोड़े या छुए।

और (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्र वाली (सती) हो वैसे ही कर, तथा प्रतिज्ञा कर कि हे कन्ये ! (इतः) इस पितृकुल से तुझे (प्रमुञ्चामि) छुड़ाता हूँ। (अमुतः) उस पति के घर से (न) नहीं छुड़ाता किन्तु (अमुतः) इस पतिगृह के साथ तो तुझे (सुवद्धाम्) अच्छे प्रकार सम्बद्ध (करम्) कर चुका हूँ ॥२५॥

विवाह का अन्तिम प्रधान अंग सप्तपदी

तत्पश्चात् दोनों सभा मण्डप में आके सप्त पदी विधि का आरम्भ करे। इस समय वर के उप वस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी चाहिए—इसे जोड़ा कहते हैं। वधू वर दोनों आसन पर से उठे वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जलि पकड़ के यज्ञ कुण्ड के उत्तर भाग में जावे तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्ध पर रख कर दोंनों समीप-समीप उत्तराभिमुख रहें तत्पश्चात् वर—

ओं मा सव्येन दक्षिण मतिक्राम।

गो मि० गृ० सू० प्र० २। का० २। सू० १३॥

अर्थः—हे वधू ! (सव्येन) बायें पैर से (दक्षिणम्) दाहिने पैर को (मा अतिक्राम) मत उल्लंघन कर अर्थात् आगे बायें पाद को मत रख।

ऐसा बोल के वधू को उसका दक्षिण पग उठवा के चलने के लिए आज्ञा देवे और :—

ओं इषे एक पदी भव सा मामानुव्रता भव। विष्णु स्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै वहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।

॥पार० का० १। कं० ८॥

अर्थ—हे कन्ये ! (इषे) अन्नादि के लिए तू (एकपदी भव) एक पैर चलने वाली हो और (सा) वही तू (माम्) मेरे (अनुव्रता) अनुकूल हो तेरी अनुकूलता, संपादन के निमित्त (विष्णुः) व्यापक परमात्मा (त्वा) तुझे (आ-नयतु) अच्छे प्रकार प्राप्त करे। हम तुम दोनों मिल

कर (बहून् पुत्रान् विन्दावहै) बहुत से पुत्रों को लाभ करें और (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) वृद्धावस्था पर्यन्त जीने वाले (सन्तु) हों।।

इस मंत्र को बोल के वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान*-दिशा में एक पग चले† और चलावे।

ओं ऊर्जे द्विपदी भव०‡। इस मंत्र से दूसरा

अर्थ—(ऊर्जे) बल संपादन के लिए (द्विपदी) दो पैर चलने वाली०।

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव॥ इस मंत्र से तीसरा

अर्थ :—(रायस्पोषाय) धन वा ज्ञान की पुष्टि के लिए (त्रिपदी) तीन पैर चलने वाली०।

ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव०। इस मंत्र से चौथा

अर्थ—(मयोभवाय) (मयः सुखम्) सुख की उत्पत्ति के लिए (चतुष्पदी) चौथा पैर चलने वाली०।

ओं प्रजाभ्यः पंचपदी भव०। मंत्र से पांचवा

अर्थ—(प्रजाभ्यः) सन्तानों के पालन के लिए (पंचपदी) पाँचवा पैर चलने वाली०।

ओं ऋतुभ्यः षट्पदी भव०॥ इस मंत्र से छठा और

अर्थ—(ऋतुभ्यः) ऋतुओं के अनुकूल, व्यवहार संपादन के लिए (षट्पदी) छठा पैर चलने वाली०।

---

* आश्वलायन गृह्यकारिका (विवाह होम प्रयोग) २०।

† यहाँ पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठाके ईशानकोण की ओर बढ़ाके धरे तत्पश्चात् दूसरे बायें पग को पटली (एड़ी) तक धरे अर्थात् दाहिने पग के थोड़ा सा पीछे बाया पग रक्खे इसी को एक पगला गिणनां, इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी क्रिया करे अर्थात् एक-एक मंत्र से एक-एक पग ईशान दिशा की ओर रक्खे।

‡ जो भव शब्द के आगे प्रथम मंत्र में पाठ है सो छः मन्त्रों के इस 'भव' पद के आगे पूरा बोल के पग रखने की क्रिया करे।

ओं सखे सप्तपदी भव० ॥

पार० । का० १। क० ८॥

अर्थ—(सखे) यह हेतु गर्भ संबोधन है। हे मित्रवद् वर्तमान् ! मित्रता सम्पादन के लिए (सप्तपदी) सात पैर वा सातवाँ पैर चलने वाली०। शेष पूर्ववत् सातों मंत्रों में जान लेना चाहिए।

इस मंत्र से सातवाँ पग चलना। इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बंधे हुए शुभासन पर बैठें। तत्पश्चात् प्रथम से जो व्यक्ति जल के कलश को ले के यज्ञकुण्ड के दक्षिण की ओर बैठाया था वह पुरुष उस पूर्व स्थापित जलकुंभ को ले के वधू वर के समीप आवे और उसमें से थोड़ा सा जल ले के वर, वधू के मस्तक पर छिड़कावे और वर—

मस्तक पर जल के छींटे देना

ओं आपो हिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महेरणा चक्षसे ॥१॥

ऋ० मं० १०। सू० ८। मं० १॥

अर्थ—हे जल ! जिससे कि तुम सुख देने वाले होते हो अतः वैसे तुम हमको अन्न के लिए धारण करो और बड़े रमणीय दर्शन के लिए हमें धारण करो ॥१॥

ओं यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥

ऋ० म० ७०। सू ०९ म० २

अर्थः—हे जल ! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस है उसे हमें इस लोक में उपयुक्त कराओ। पुत्र समृद्धि को चाहने वाली मातायें जैसे अपने स्तन के रस को सेवन कराती हैं वैसे ही ॥२॥

ओं तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आयो जनय था च नः ॥३॥

॥ ऋ० म० १० सू० ९। म० ३॥

अर्थः—हे जलो ! जिस आग के निवास के लिये तुम औषधियों को

तृप्त करते हो उसी अन्न के लिये हम पर्याप्त रूप से तुम्हें प्राप्त करते हैं और तुम हमको पुत्र पौत्रादि के उत्पादन करने में प्रयुक्त करो ।।३।।

ओं आपः शिवः शिवतमाः शान्ताः शन्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।।४।।

अर्थ :—(आपः) जो जल (शिवाः) कल्यान के हेतुभूत हैं। (शिवतमाः) अत्यन्त अभ्युदयकारी हैं, (शान्ताः) सुख पहुँचाने वाले हैं, (शान्त तमः) अधिक सुख देने वाले हैं। (ताः) वे जल (तेभेषजम्) तेरी नीरोगता को (कृण्वन्तु) करे ।।४।।

इन चार मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वर वधू दोनों वहाँ से उठ के—

सूर्यावलोकन

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ँ् श्रुणयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् * ।।

य० अ० ३६ । म० २४

अर्थ :—हे सूर्यवत । प्रकाशमान परमेश्वर ! आप विद्वानों के हितकारी शुद्ध नेत्र तुल्य सबके दिखाने वाले अनादिकाल से सबके ज्ञाता हैं उस आपको हम सौ वर्ष तक ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से सौ वर्ष

---

* साच (वधूः) वर प्रेषिता सती (तच्चक्षुः) इतिमन्त्रेण स्वयं पठितेन सूर्यन्निरीक्षते दिवा विवाह पक्षे (इति पार० गृ० सू० का० १। क० ८ । टीकायां हरिहरमिश्रः) अर्थात् वर के कहने से वधू (तच्चक्षुः) इस मन्त्र को स्वयं बोलकर सूर्य को देखे यदि दिन में विवाह हो, तो। यह पार० ग० सू० के टीकाकार हरिहरमिश्र ने लिखा है। गदाधराचार्य, (उक्त, गृ० सू० के द्वितीय टीकाकार) का तो मत है कि पारस्कर मतावलम्बियों को दिन ही में विवाह करना चाहिए क्योंकि आगे यह भी लिखा है कि—(अस्तमिते) ध्रुवं दर्शयति) अर्थात् सूर्य्य अस्त होने ध्रुव को दिखावे ।।

तक हम जीवें। सौ वर्ष तक शास्त्रों को सुने सौ वर्ष पर्यन्त ज्ञान देवें, सौ वर्ष तक दीनता रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें सुनें, सौ वर्ष पर्यन्त ज्ञान देवें, सौ वर्ष तक दीनता रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें सुनें और अदीन रहें।

इस मन्त्र को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करे। तत्पश्चात् वर वधू के दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ ले जाकरके उससे वधू का हृदय स्पर्श करके—

हृदय स्पर्श

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्त मनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमे कमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।

अर्थ :—हे वधू ! (ते) तेरे (हृदयम्) अन्त:करण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूँ। (मम) मेरे (चित्त,) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमना:) एकाग्र चित्त से (जुषस्व) सेवन किया करे (प्रजापति:) प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुझको (मह्यम्) मेरे लिये (नियुनक्तु) प्रदान करे।*

---

* वैसे ही हे प्रियवीर स्वामिन् ! आपका हृदय आत्मा और अन्त:करण अपने प्रिय चित्रण कर्म में धारण करती हूँ। मेरें चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे आप एकात्र होकर मेरी वानी का जो कुछ मैं आप से कहूँ उसका—सदा सेवन किया कीजिये। क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आपको मेरे अधीन किया है जैसे मुझको आपके अधीन किया है—अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वार्ता करें जिससे सदा आनन्दित और कीर्तिमान् पतिव्रता और स्त्रीव्रत हों के सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीति युक्त रहें।

इस मन्त्र को बोले—और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुये मन्त्र को बोले ॥

तत्पश्चात् वर, वधू के मस्तक पर हाथ रखके:—

वर का वधू—आशीर्वाद निमित्त निवेदन

सुमङ्गलीरियं वधूरिमाम् समेत पश्यत् सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं वि परतेन ।

॥ ऋ० मं १०। सू० ८५। मं० ३३ ॥

अर्थ:—हे विद्वान् लोगो (इयम् वधूः) यह वधू (सुमंगलीः) छान्दसो विसर्गः । शोभन मंगल स्वरूप है अतः इस कन्या के साथ (समेत) मेल रक्खो और (इमाम्) इसको (पश्यत) मङ्गल दृष्टि से देखो और (अस्य) इसके लिए (सौभाग्यंदत्वा) आशीर्वाद देकर (अस्तम्) अपने घर के प्रति (याथ) जाओ और (न, वि, पग, इत) विशेष रूप से पराङ्गमुख होकर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मङ्गल की आशा से फिर भी आते रहो ।

इस मंत्र को बोलकर कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और इस समय सब लोग—

आशीर्वाद

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥

अर्थ:—(सौभाग्यम्) धन धान्यादि सम्पन्नता (अस्तु) हो (शुभम्) कल्याण (अस्तु) हो । इस वाक्य से आशीर्वाद देवें ।

तत्पश्चात् वधू वर यज्ञ-कुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के स्विष्टकृत् मंत्र से एक होमाहुति करें । यह घृत की अथवा शाकल्य की देनी चाहिए—

---

* यहाँ पर वधू को वर के वाम भाग में बैठावे ऐसा पारस्कर गृ० सू० के टीकाकार हरिहर मिश्र लिखते हैं ।

स्विष्टकृत् मंत्र

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचंयद्वान्यूनमिहाकरम् अग्निष्टात्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे अग्नये स्विष्टकृते सुहुत हुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे, सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम ।।

शत० का० १४। अ० ८। प्र० ७। क० ५।।

व्यवहृति आहुतियाँ

(१) ओं भूरग्नये स्वाहा । इदममग्नये इदन्नमम ।

अर्थ :—अग्निरूप ईश्वर के लिए० ।

(२) ओं भुवर्वायवे स्वाहा इदं वायवे-इदन्नमम ।

अर्थ :—वायु व्यापक ईश्वर के लिए ।

(३) ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय इदन्नमम ।।

अर्थ :—आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिए ।

(४) ओं भूर्भुव स्वरग्निर्वाव्यादित्येभ्यः स्वाहा ।
इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः, इदं न मम ।।

पार० का० १। कं० ५। सू० ३४।

अर्थ :—पूर्वोक्त सर्वगुण सम्पन्नों के लिए ।

।। पूर्वविधि समाप्तः ।।

अथ उत्तरविधिः

(विश्राम के पीछे उत्तर विधि)

इस प्रमाण-विवाह की पूर्वविधि पूरे हुए पश्चात् दोनों आराम करें। इस रीति से थोड़ा सा विश्राम करके विवाह की उत्तर विधि करें। यह उत्तर विधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो—वहाँ जाके करनी चाहिए। तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञ कुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें और अग्न्याधान (**ओं भूर्भुवः स्वद्यौः०**) इस मंत्र से करें—यदि प्रथम ही सभा मण्डप ईशान दिशा में हो और अग्न्याधान किया हो तो अग्न्याधान न करें तथा (**ओं अयन्त इध्म०**) इत्यादि चार मंत्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब :—

(१) **ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम्।**

अर्थ :—भौतिक अग्नि के लिए सुहुत हो।

(२) **ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्नमम।**

य० २०-२८

अर्थ :—(सोमाय) सोमरसादि के लिए व परमात्मा की प्रीत्यर्थ सुहुत हो। इस मंत्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी चाहिए। तत्पश्चात्—

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतयें इदन्नमम ॥

॥य० अ० १८ मं० २८॥

अर्थ :—(प्रजापतये) प्रजाओं के पालक के लिए।

इत्यादि चार मंत्रों से आधारावाज्य भागाहुति और—

ओं भूरग्नये स्वाहा ।।

अर्थ :—प्रकाश स्वरूप परमात्मा के लिए सुहुत हो इत्यादि चार मंत्रों से चार व्याहृति आहुति, ये सब मिलके आठ आज्याहुति देवें, तत्पश्चात् प्रधान होम निम्नलिखित मन्त्रों से करें—

प्रधान होमाहुति व होम से रक्त शुद्धि

ओं लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते । तानिते पूर्णाहुत्या सर्वाणि समयाभ्यहं स्वाहा ।। इदं कन्यायै इदन्न मम ।।१।।

सा० म० वा० म० ।।१।।

अर्थ :—हे कन्ये ! (लेखासन्धिषु) रेखा-मस्तकादि रेखाओं की सन्धियों (पक्ष्मसु) नेत्रों के लोमों में (च) और (आरोकेषु) नाभिरंध्रादिकों में (ते) तेरे (यानि) जो बुरे चिन्ह होंगे (ते सर्वाणितानि) तेरे उन सबों को (पूर्णाहुत्या) इस पूर्णाहुति के द्वारा (अहम्) मैं पति (शमयामि) शमन करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ।

ओं केशेषु यच्च पाप कमीक्षिते रुदिते च यत् । तानि० ।।२।।

अर्थ :—(यतच्) और जो (केशेषु) बालों में (पापकम्) बुराई होगी (इक्षिते) देखने से सम्बन्ध में (यत्च) और जो (रुदिते) चलने फिरने में बुराई होगी उस सबको शेष पूर्ववत् ।।२।।

ओं शीलेषुयच्च पापकं भाषिते हसिते च यत् । तानि० ।।३।।

अर्थ :—(यत्च) और जो (शीलेषु) स्वभाव या व्यवहारों में (यत्च) और जो (भाषिते, हसिते) बोलने और हँसने ? (पापकम्) बुराई होगी—शेष तुल्य० ।।३।।

ओं आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् । तानि० ।।४।।

अर्थ :—(च) और (आरोकेषु) दाँतों के बीच में (हन्तेषु) दाँतों में (यत्च) और जो (हातयोः पादयोः) हाथ और पैरों में बुराई होगी । शेष तुल्य० ।।४।।

ओं ऊर्वोरूपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि० ॥५॥

अर्थ :—(ऊर्वोः) जाँघों में (उपस्थे) गोपनीय इन्द्रिय में (जंघयोः) घुटनों में (च) और (न्धानेषु) अन्यान्य सन्धि स्थानों में बुराई होगी । शेष तुल्य० ॥५॥

ओं यानि कानि च घोराणि सर्वांगेषु तवाभवन् । पूर्णाऽऽहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा । इदं कन्यायै, इदन्न मम ।

गोभि० गृ० सू० स० २ ।

का० ३। सू० ६॥ मं० ब्रा० प्र० १ ख० ३ मं० १-६॥

अर्थ :—(च) और हे कन्ये ! (तव, सर्वांगेषु) तेरे सब अङ्गों में यानि कानि) जो कोई (घोराणि) बुराई या कमी (अभवन्) हो चुकी या होगी (आज्यस्य, पूर्णाहुतिभिः) इस घृत की पूर्णाहुतियों की प्रसिद्धि के साथ (तानि, सर्वाणि) उन सब बुराई या कमियों को (अशीशमम्) शान्तकर चुकने की प्रतिज्ञा कर चुका, ऐसा समझ ॥६॥

ये छः मन्त्र हैं, इनमें से एक-एक से छः आज्याहुति देनी चाहिए फिर—

ओं अग्नये स्वाहा ।

अर्थ :—प्रकाशक परमात्मा के लिए सुहुत हो, इत्यादि चार व्याहृति मन्त्रों से चार आज्याहुति देके वधू वर वहाँ से उठ के सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें । तत्पश्चात् वर—

ध्रुव तथा अरुन्धती दर्शन

ध्रुवं पश्य ।

अर्थ :—ध्रुव को (पश्य) देख ।

ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे और वधू वर से बोले कि मैं—

पश्यामि । अर्थ :—ध्रुव के तारे को देखती हूँ ।

तत्पश्चात् वधू—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाऽहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य *असौ)

गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ३। सू० ९॥

अर्थ :—हे ध्रुव नक्षत्र ! (ध्रुवम् असि) तू जैसे निश्चल है वैसे ही (अहम्) मैं (पतिकुले) पति के कुल में (ध्रुवा) निश्चल (भूयासम्) ईश्वर करे निश्चल कि होऊँ।

इस मन्त्र को बोल के तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य।

अर्थ :—(अरुन्धतीम्) अरुन्धती को (पश्य) देखो। ऐसा वाक्य बोल के वर अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि। अर्थ :—देखती हूँ—ऐसा कहके—

ओं अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि (अमुष्य, असौ)

गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ३। सू० १०-११॥

अर्थ :—(अरुन्धती) अरुन्धाति ! तारे जैसे तू सप्तर्षि नामक तारों के निकट सर्वदा (रुद्धा) रुका रहता है वैसे मैं भी अमुक नाम वाली अमुक की पत्नी, अपने पति के नियम में रुक गई—बँध गई हूँ।

पारस्कर के मत में एक ध्रुव ही दिखाया जाता है। गोभिल, ध्रुव, और अरुन्धती दोनों को दिखलाना मानते हैं। मानव गृहम सूत्रकार ध्रुव, और सप्त ऋषियों का भी दिखलाना मानते हैं—

---

*—(अमुष्य) इस पद के स्थान में विभक्त्वन्त पति का नाम बोले। जैसे शिवशर्मा पति का नाम हो तो 'शिवशर्मण:' ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमा विभक्तन्त बोल के इस वाक्य को पूरा बोले—जैसे 'सौभाग्यदाऽहं शिवशर्मणस्ते भूयासम्' हे स्वामिन् ! सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्मा की अर्द्धाङ्गी (पतिकुले) आपके कुल में (ध्रुवा) निश्चल जैसे कि आप (ध्रुवम्) दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आपकी स्थिर दृढ़ पत्नी (भूयासम्) होऊँगी।

इस मन्त्र को वधू बोले फिर वर वधू की ओर देख के और वधू के मस्तक पर हाथ रखकर—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् । ध्रुवा सः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ॥

सा० मं० ब्रा० प्र० १। स्व० ३। मं ७॥

अर्थ :—वरानने ! जैसे—(द्यौ) सूर्य कान्ति या विद्युत् (ध्रुवा) सूर्यलोक वा पृथिव्यादि में निश्चल (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाह स्वरूप में स्थिर है जैसे—(इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वतः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तू मेरी स्त्री (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रहे ।

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधे-पोष्ये, मयि मह्यं त्वाऽदात् । बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥

पार० गृ० सू० का० १ । क० ८। सू० १९॥

अर्थ :—हे स्वामिन ! जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ संकल्प करके स्थिर (असि) बैठे हैं जैसे मैं (त्वा) आपको (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूँ वैसे ही सदा के लिए मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आपको (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त होके (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (शंजीव) अच्छे जीविये । तथा हे वरानने पत्नि ! (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह (मह्यम्) मुझको अपनी इच्छा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द पूर्वक जीवन धारण कर । वधू बर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिससे कभी उलटे विरोध में न चलें ।

इन दोनों मन्त्रों को बोले, तत्पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख होके कुण्ड के समीप बैठें और—

ओं अमृतो परस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥

ओं अमृतापिधान मसि स्वाहा ॥२॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

विशेष भात का होम

इन तीन मन्त्रों से तीन आचमन दोनों करें पश्चात् समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावे, **ओ३म् अयन्त इध्म०** इत्यादि चार मन्त्रों से होम दोनों करके पश्चात् आधारावाज्य भागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिलके आठ आज्याहुति वर वधू देवें फिर जो पहले सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात है उसको एक पात्र में निकाल के उसके ऊपर चीनी व घी मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा-थोड़ा भात दोनों लेके :—

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ॥१॥

अर्थ :—अग्नि के लिए सुहुत हो ॥१॥

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्नमम ॥२॥

अर्थ :—प्रजाओं के पालक के लिए ॥२॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदन्न मम ॥३॥

अर्थ :—समस्त देवों के लिए सुहुत हो ॥३॥

ओं अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये, इदन्नमम ॥४॥

पार० गृ० सू० का० १ १२ सू० ॥३॥

अर्थ :—अनुकूल मति वाले के लिए सुहुत हो ॥४॥

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक करके चार स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी फिर (ओं यदस्य कर्मणो) इस मन्त्र से एक स्विष्ट कृत आहुति देनी चाहिए। फिर व्याहृति आहुति चार और

सा० प्रकरणोक्त आज्याहुति आठ एवं बारह आज्याहुति देनी फिर शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन कर और दक्षिण हाथ में रखके—

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राण सूत्रेण पृश्निना । बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते ॥१॥

अर्थ :—हे वधू वा वर ! (अन्नपाशेन) अन्न है पाशवसमान जिसका जैसे (मणिना) रत्न तुल्य (पृश्निना) शरीरान्तवर्ती छोटे से (प्राण सूत्रेण) प्राण रूपीसूत से (सत्य ग्रन्थिन) सचाई की गाँठ लगा कर (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (च) और (मनः) मन को (बध्नामि) बाँधती वा बाँधता हूँ ।

ओं यदेतद् हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम ।
यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ॥२॥

अर्थ :—स्वामिन् वा हे पत्नि ! (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा अन्तःकरण है (तत्) वह (मम) मेरा हृदयम् आत्मा अन्तःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा प्राण और मन है (तत्) सो (तव) तेरे (हृदयम्) आत्मादि के लिए प्रिय (अस्तु) सदा रहे ॥२॥

ओं अन्नं प्राणस्य षड्विंशस्तेय बध्नामि त्वा असौ ॥३॥

॥सा० म० ब्रा० प्र० १ ।ख० ३। मं० १०॥

अर्थ :—(असौ) हे यशोदे वधू ! जो (प्राणस्य) प्राण का पोषण करने हारा (षड्विशः) छब्बीसवां तत्व (अन्नम्) अन्न है (तेन) उससे (त्वां) तुझको (बध्नामि) दृढ़ प्रीति से बाँधता वा बाँधती हूँ ॥३॥

कहीं (षड्विशः) ऐसा पाठ है षड्विशः का अर्थ भी बन्धन किया है ।

वधू वर का सह-भोजन

उक्त तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम

थोड़ा सा भक्षण करने से पूर्व अपनी वधू के लिए भी खाने को देवे। और जब वधू उसको खा चुके तब वधू वर यज्ञ मण्डप में सन्नद्ध हुए शुभासन पर नियम से पूर्वाभिमुख बैठें—

तदनन्तर "द्यौः शान्तिः आदि मन्त्र बोलकर उत्तर विधि समाप्त करें। पुनः वर यथाक्रम वृद्धजनों तथा पिता और गुरु आदि को खड़ा होकर—

अहं भोः अभिवादयामि—कहकर अभिवादन करे पश्चात् कार्यकर्त्ता यज्ञमण्डप में उपस्थित पुरुषों को सम्बोधित करके कहे कि—

ओं स्वस्तिभवन्तो ब्रुवन्तु—

पुनः समुपस्थित महानुभाव कार्यकर्त्ता के साथ मिलकर

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति०

कहकर वर को आशीर्वाद दें और कार्यकर्त्ता आगत सज्जनों का यथावत् सत्कार करके आचार्य व ऋत्विजों को दक्षिणा व धार्मिक संस्थाओं के लिये दान देकर विदा करें तदनन्तर ! साम-गान करें।

मंगल कार्य (वामदेव्यगान)

ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृधः सखा। कया शचिवष्ठया वृता ॥१॥ ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्योमदानां म ँहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढ़ा चिदारुजे वसु ॥२॥ ओं भुर्भुवः स्वः। अभीषुणः सखीनामविता जरितृणाम्। शतम्भवास्यूतये ॥३॥ महावामदेव्यम्—काऽ५ या। नश्चा ३ इत्रा ३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः सखा। औ ३ हो हाइ। कया २३ शचाइ। ष्ठयौलो ३। हुम्मा ॥२॥ बा२र्तो ३ऽ५ हाइ ॥(१)॥ का ऽ५ स्त्वा सत्यो ३ मा दानाम्। मा। हिष्ठोमात्सादन्धः। सा। औ ३ होहादा दृढ़ा २३ चिदा। सजौहो ३। हुम्मा २। साऽ३सो ३ऽ५ हायि ॥(२)॥ आ ऽ५ भी। वुणा ३: सा ३ खीनाम्। आ। विता जराभितृ रायम। और २३ होहायि। शता २३ म्भवां। सियौहो ३। हुम्मा २ ताड २ यो॥३ऽ५ हायि ॥३॥

साम उत्तरार्चि के। अध्याये १ ख० ४। मं० ३३ ।४।५॥

चतुर्थी कर्म*

फिर दस घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक पृथक स्थान में भूमि पर बिछौना करके तीन रात्रि पर्यन्त ह्मचर्य व्रत ब्रसहित रहकर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे। तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधान संस्कार करें। यदि चौथे दिवस कोई अड़चन आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्य व्रत में दृढ़ रहे फिर जिस दिन दोनों की इच्छा हो शास्त्रोक्त गर्भाधान की रात्रि भी हो उस रात्रि में यथा विधि गर्भाधान करें।

॥ इति उत्तर विधिः ॥

---

*देखो पार० गृ० सू० क० १। क० ८। सू० २१। यह चतुर्थी कर्म विवाह का अङ्ग है। आजकल चतुर्थी कर्म के स्थान पर कन्या के घर में चला जाता है।

नोट :—(अ) 'जीवं रुदन्ति' इस मंत्र से लेकर 'इहप्रियं' इस मंत्र तक जो जिस मंत्र में विधि लिखी हैं वह सब भट्ट कुमारिल स्वामी प्रणीत आश्वलायन गृह्य सूत्र कारिका के 'गृह प्रवेश प्रकरण' के अनुसार है।

नोट—(आ) सुमङ्गली करणविधि पूर्व विधि की समाप्ति पर न कर भात खाने के बाद भी कर सकते हैं।

(इ) विवाह में जितनी मिठाइयाँ बनी हों उस सब से ही बलि-वैश्व देव करना चाहिए।

अथ विवाह परिशिष्ट

(वर का वधू के यहाँ जाना)

इसके आगे संस्कार विधि के अनुसार विवाह के बाद का उपयुक्त मंत्र—भाग लिख दिया गया है उसका विद्वान-वर यथा समय उपयोग करें—

दूसरे वा तीसरे दिन प्रातःकाल वर पक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा के बड़े सम्मान से अपने घर में लावें और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आँख में अश्रु भर लावे अर्थात् विदा के समय कन्यादि रोने लगे तो यह मंत्र पढ़े।

*ओं जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनुप्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥

॥ ऋ० मं० १० सू० ४ मं० १० ॥

अर्थ :—हे विद्वान् लोगो ! (ये, नरः) जो मनुष्य पति रूप (जीवम्, रुदन्ति) स्त्रियों के जीवन सुधारने के उद्देश्य से कष्ट उठाते हैं और अपनी स्त्रियों को (अध्वरे) यज्ञ में (वि मयन्ते) प्रवेश कराते हैं, और (दीर्घाम् प्रसितम्) लम्बे गृहस्थाश्रम के श्रेष्ठ बन्धन को (अनुदीधियुः) अनुकूल व्यवहार में लाते हैं और जो (पितृभ्यः), अपने माता पिता की सेवा के लिए (इदम् वामम्) इस सुन्दर अपत्य को (सन, एरिरे) अच्छी तरह प्रेरित करते हैं। उन्हीं (पतिभ्यः) पति-रूप पुरुषों के लिए निम्नलिखित मन्त्रों से वलिवैश्वदेव यज्ञ करें—

---

* 'जीवं रुदन्ति' इस मंत्र से लेकर 'इह प्रियं' इस मंत्र तक जो जिस मंत्र में विधि लिखी है वह सब भट्ट कुमारिल स्वामी प्रणीत् आश्वलायन गृह्य कारिका के 'गृह प्रवेश प्रकरण' के अनुसार है।

ॐ अग्नये स्वाहा ।

ॐ सोमाय स्वाहा ।

ॐ अग्नी ओमाभ्यां स्वाहा ।

ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो: स्वाहा ।

ॐ धन्वन्तरये स्वाहा ।

ॐ कुह्वै स्वाहा ।

ॐ अनुमत्यै स्वाहा ।

ॐ प्रजापतये स्वाहा ।

ॐ द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ।

ॐ स्विष्ट कृते स्वाहा ।

"वृद्धानां वचनं ग्राह्यं श्मशानो द्वाहयो:"

सदा इस नियम के अनुसार बलिवैश्व देवयज्ञ करके निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ॐ अहं भुव वसुन: पूर्व्वस्य तिरहं धनानि सञ्जया शश्वत: । मां हवन्ते पितरं न जन्तवो ऽहं दाशुसे विभजामि भोजनम् ।

ऋग्—१०।४८।१

ॐ तत्सवितु वृणीमहे वयं देवस्य भोजनां श्रेणी सर्वधातमम् । तुरधातमम् तुरंभगस्य धीमहि ।

ऋक् ५।८२।१

ॐ अन्नपते ! अन्नस्य नो देह्यन्म भीवस्य शुष्मिथ: प्रप्रदातारं तारिम ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।

राज० ।११।८३।।

फिर थोड़ा सा यज्ञ शेष शाकल्य वर स्वयं भक्षण करके इस मंत्र को वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे, उस समय वर—

ओं पूषा त्वेतो नयतु हस्त गृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनीत्व विदथमा वदासि ।।१।।

।।ऋ० मं० १०। सू० ८५।।

अर्थ :—हे कन्ये ! (इतः) यहाँ से (हस्तगृह्य) पकड़ने योग्य है हाथ जिसका ऐसा (पूषा) पोषण करने वाला यह पति (नयतु) घर को पहुँचावेगा और (अश्विना) वेग वाले दो घोड़े वाले (रथेन) रथ से बग्घी से (त्वम्) तुझे (प्रवहताम्) अच्छे प्रकार ले जावे (तू) (गृहान्) अपने पति के घर को (गच्छ) जा। (यथा) जैसे कि तू (गृह पत्नी) घर की स्वामिनी (असः) हो (वाशिनी, त्वम्) पति की शुभ कृत्यों से वश में रखने वाली तू (विदथम्) पति के घर में स्थित भृत्यादि को (आ, वदासि) अच्छे प्रकार आज्ञा दे ॥१॥

ओं सुकि शुकं० शल्मलिं 'विश्वरूपं' हिरण्यवर्णं सुवृतं सचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोके स्योन पत्ये वहतु कृणुष्व ॥२॥

ऋ० मं० १०।सू० ८५ मं० २० ।

गोभि० ऋ० सू० प्र० २।का० ४। सू० १॥

अर्थ :—हे (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्विनी कन्ये ! (सुकिंशुकम्) अच्छे पलाश के वृक्ष से निर्मित (शल्मलिम्) सेमर के वृक्ष की लकड़ियों से युक्त (सुवृत्तम्) अच्छे चलने वाले (सुचक्रम्) सुन्दर पहिये वाले, इस (वहतुम्) रथ पर तू (आ, रोह) चढ़ ! और (पत्ये) अपने पति के लिए (वहतम्) अपने गमन की (स्योनम्) सुखकारी और (अमृतस्य, लोकम्) पीड़ा रहित स्थान (कृणुष्व) कर ।

यह मन्त्र कुछ पाठ भेद के साथ सा० म० ब्रा० प्र० १। खं० ३। मं० ११ में भी आया है वधू के रथारोहणारम्भ के समय इस मन्त्र के बोलने की आज्ञा आपस्तम्भीय गृह्यसूत्र खण्ड ५ सू० २२ में भी है ।

इन दोनों मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे यदि वधू को वहाँ से अपने घर लाने के समय नौका पर चढ़ना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे :—

ओं अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः । (ऋचाका पूर्वार्द्ध)—

अर्थ :—हे (सखाय:) चेतनत्वेन समानख्याति वाले जीवो ! जब (अश्मन्वती) पत्थर आदि से युक्त नदी (रीयते) बहती हो तब (सम् रभध्वम्) अच्छे प्रकार वेग वा उत्साह से काम लो, (उत्, निष्ठत) सावधान होकर स्थित होओ, और उस नदी को (प्रतरत) अच्छी तरह उतर जाओ। और नाव से उतरते समय—

ओं अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वय मुत्तरे माभिवाजान ॥

ऋ० म० १०। सू० २३। मं० ८॥

अर्थ :—ऐसा समझो कि (अत्र) यहाँ नदी पर ही (ये) जो (अशेवा:) दुखदायी व दु:खसाधन (असन्) हैं उन्हें (जहामे:) छोड़ते हैं और (वयम्) हम (शिवान्, वाजान्) कल्याणकारी अन्नादि पदार्थों को (अभि) प्राप्त होने के लिए (उत्तेरम) उतरेंगे ही।

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल के नाव से उतरें, पुन: इसी प्रकार मार्ग में चार मार्गों का संयोग नदी, व्याघ्र, चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान ऊँचे नीचे खड्डे वाली पृथिवी बड़े-बड़े वृक्षों का झुण्ड वा श्मशान भूमि आवे तो—

ओं मा विदन् परि पन्थिनो य आसी दन्ति दम्पती। सुगेभि र्दुर्ग ममीतानामपद्रान्त्वरातयः ॥

ऋ० मं० १० सू० ८५। मं० ३०।

तथा सा० मं० प्र० १। सं० ३। मं० १२॥

अर्थ :—(ये) जो (परिपन्थिन:) दु:ख देने वाले डाकू आदि (दम्पती:) उन रथारूढ़—जाया पति के प्रति (आ, सीदन्ति) सम्मुख आते हैं। वे (माविदन्) ईश्वर करे कि न मिले। (दुर्गम्) दुर्गम देश को अति उल्लंघन करके (सुगेभि:) सुगम मार्गों से (इतम्) जाने वालों के (अरातय:) शत्रु हैं भी ईश्वर करे कि (अप, द्रान्तु) भाग जावें।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर जिस रथ में बैठ के जाते हों। उस रथ का कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का अकस्मात्

उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुए विवाहाग्नि को प्रकट करके उसमें चार व्याहृति आहुति देनी चाहिए, पश्चात् वामदेव्यगान करना फिर जब वधू वर का रथ घर के आगे पहुँचे तब-तब कुलीन पुत्रवती-सौभाग्यवती वा कोई ब्राह्मणी या अपने कुल की स्त्री आगे सामने आकर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में ले जावे सभामण्डपके द्वार पर आते ही वह, वहाँ कार्यार्थ आये हुए लोगों को अवलोकन करके—

ओं सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरतेन ॥

ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं०३३।

अर्थ:—हे विद्वानों! यह वधू मङ्गलस्वरूप है। अतः इस कन्या के साथ मेल रक्खो और इसको मङ्गल दृष्टि से देखो और इसके लिए सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर के प्रति जाओं। रूप से पराङ्मुख होकर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मङ्गल की आशा से फिर भी आने के लिए जाओ।

इस मंत्र को बोले और आये हुए लोग—

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु।

अर्थ —ईश्वर करे कि सौभाग्य हो और कल्याण हो। इस प्रकार आशीर्वाद देवे तत्पश्चात् वर—

ओं इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एन्ना पत्या तन्वं संसृजस्वाधाजिव्री विदथमावदाथः ॥

ऋ० मं०१०। सू० ८५। मं० २७

अर्थ:—हे वधू! (ते) तेरा (इह) इस पति कुल में (प्रियम्) सुख (प्रजया) सन्तान के ज्ञान (सम, ऋध्यानम्) अच्छे प्रकार बढ़ें। गार्हपत्याय) घर की स्वामिनी बनने के लिए (अस्मिन् गृहे) इस पति

के घर (जागृहि) जागती रहे—सावधान रहे (एना, पत्या) इस पति के साथ ही (तन्वम्) अपने शरीर को (सं, सृजस्व) संसर्ग कर (अध) और (जिव्री) वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तुम दोनों पति पत्नी (विदथम्) गृहस्थाश्रम धर्म पालन रूपी यज्ञ की (आ, वदाथ:) अच्छे प्रकार प्रशंसा करो ।।

इस मंत्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावे फिर वधू वर, पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें उस समय वर—

ओं इह गाव: प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषा: । इह सहस्र दक्षिणोपि पूषा निषीदतु ।।

(सा० मं० प्र० १। ख० ३। मं० १३ तथा पार० गृ० सू०)
अ० १ का० ८। सू० १०। अ० का० २०। सू० १२७। मं० १२।।

अर्थ :—(इह) इस पतिकुल में (गाव:) गौयें (प्रजायध्वम्) अधिक हों। (इह) यहाँ (अश्वा:) घोड़े और (इह) यहाँ (पूरुष:)पुत्र पौत्रादि अधिक हों। (इह) और यहाँ—(पूषा) इस घर का पोषण करने वाला मैं–(सहस्रदक्षिणा: अपि) सहस्रों का दान देता हुआ ही (निषीदतु) बैठा रहूँ।

इस मंत्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावें। फिर—

ओं अमृतोपस्तरण मसिस्वाहा ।।

अर्थ :—हे सुखप्रद जल ! तू प्राणियों का आश्रयभूत है यह हमारा कथन शोभन हो ।।

इत्यादि तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें, फिर कुण्ड में यथाविधि समिधाचयन अग्न्याधान करें जब उसी कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिद्ध करके समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में आधारावाज्य भागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार, अष्टाज्याहुति आठ, सब मिलके सोलह आठ्याहुतियों को वधू वर करके प्रधान होम का आरम्भा निम्नलिखित मन्त्रों से करें।

ओं इह धृतिः स्वाहा। इदमिह धृत्यैइदन्न मम।

भ० ब्रा० १-६-१-४।

अर्थ :—हे वधू ! (इह) इस घर में तेरा (धृतिः) धैर्य बना रहे।

ओं इह स्वधृतिः स्वाहा। इदमिह स्वधृत्यै इदन्न मम॥

अर्थ :—(इह) इस घर में (स्वधृतिः) अपने कुटुम्बी लोगों के साथ एकत्र स्थित मेल हो॥

ओं इह रतिः स्वाहा। इदमिह रत्यै-इदन्न मम॥

अर्थ :—(इह रतिः यहाँ रमण बना रहे।

ओं इह रमस्व स्वाहा। इदमिहरमाय-इदन्न मम॥

अर्थ :—(इह रमस्व) यहाँ तू भी रमण किया करे।

ओं मयि धृतिः स्वाहा। इदं मयि धृत्यै इदन्न मम॥

अर्थ :—(मयि) मुझ पति में विशेषकर (धृतिः) धैर्य बना रहे।

ओं मयि स्वधृतिःस्वाहा। इदं मयि स्वधृत्यै इदन्न मम।

अर्थ :—(मयि स्वधृतिः) मेरे लिए विशेष आत्मीयजनों के साथ मेल रहे।

ओं मयि रमः स्वाहा। इदं मयि रमाय-इदन्न मम॥

अर्थ :—(मयि, रम) मेरे पदार्थों में रमण किया कर।

ओं मयि रमस्व स्वाहा। इदं मयि रमाय-इदन्न मम॥

सा० मं० प्र० १। खं० ३ मं० १४।

अर्थ :—(मयि, रमस्व) विशेषकर मुझमें ही रमण किया कर। इन प्रत्येक मन्त्रों से एक एक करके आठ आज्याहुति देकर—

ओं आ नः प्रजां जनयतु प्रजापति राजरसाय समनक्त्वर्यमा। अमुंमंगलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदेशं चतुष्पदे स्वाँहा। इदं सूर्यै सावित्रै इदन्न मम॥१॥

ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४३।

अर्थ :—हे वधू ! (अर्यमा) न्यायकारी ध्यानु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाथ) जरावस्थापर्यन्त जीने के लिए (नः)

हमारी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा के शुभ गुण कर्म स्वभाव से (अजनयतु) प्रसिद्ध करे (समनक्तु) उससे उत्तम सुख को प्राप्त करें और वे शुभ गुणयुक्त (मंगलीः) स्त्री लोग सब कुटुम्बियों को आनन्द (अवुः) देवे उनमें से एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर व सुख को (आविश) प्रवेश कर वा प्राप्त हो (त्) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों लिए (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) आदि मनुष्यों के (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) जौ आदि को (शम्) सुखकर्मी (भव) हो ॥१॥

ओं अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीर सूर्देवृकामा ।* स्योना शन्नो भव द्विपदेशं चतुष्पदे स्वाहा । इदं सूर्यायै सावित्र्यै इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४४

अर्थ :—पति से विरोध न करने वाली अपने उत्तम पुरुषार्थ से तू प्रिय दृष्टि हो मंगल करने वाली सब पशुओं को सुखदता पवित्रान्तःकरण युक्त सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव से उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने वाली देवर की कामना करती हुई सुखयुक्त होके हमारे मनुष्यादि के लिए सदा सुख करने वाली और पशु आदि को भी सुख देने वाली हो—वैसे ही मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूँ ॥२॥

ओं इमाँ त्वमिन्द मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि स्वाहा । इदं सूर्यायै साबित्र्यै इदन्न मम॥३॥

अर्थ :—ईश्वर पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेवन करने वाले (इन्द्र) हे परमैश्वर्य युक्त इस वधू के स्वामिन् (त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्रान्) उत्तम पुत्र युक्त (सुभगाम्) सुन्दर भौभाग्य वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) पुत्रान्) पुत्रों को (आधेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री तु भी

* वस्तुतः देवकामा पाठ है अर्थात् देवताओं की इच्छा करने वाली ।

अधिक कामना मत कर किन्तु दश पुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पपि को प्राप्त होकर सन्तोष (वृद्धि) कर, यदि इससे आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोग ग्रस्त हो जाओगे इसलिए अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना।

ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्वां भव। नना-दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु स्वाहा। इदं सूर्यायै सावित्र्यै—इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १० सू० ८५। मं० ४६।

अर्थ :—हे वरानने ! तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वसुर है, उसमें उचित प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो। (श्वश्वाम्) मेरी माता जो कि तेरी सासु है। उसने प्रेम युक्त होके उसी की आज्ञायें (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (नन्दरि) जो मेरी बहन और तेरी ननद है उससे भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर-ज्येष्ठ अथवा घनिष्ठ हैं उनमें भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधिभव) अधिकार युक्त हो अर्थात् अधिकार युक्त हो अर्थात् सबसे अघिरोधपूर्वल प्रीति से बर्त्ताव कर ॥४॥

इन चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देके स्विष्टकृति होमाहुति एक व्याहृतियों की आज्याहुति चार और प्राजापत्याहुति एक ये सब मिल के छः आज्याहुति देकर—

सह भोजन का मंत्र

ओं समञ्जन्तु बिश्व देवाः समायो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥

ऋ० मं०। सू० ८५। मं ४॥

ओं अन्नपते ! अन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।

प्रप्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदेशं चतुष्पदे ॥ यजुः ॥

हमारे दोनों हृदय जल समान शान्त और मिले हुए रहेंगे जैसे प्रात. वायु हमको प्रिय है वैसे हम दोनों सदा एक दूसरे से रहेंगे जैसे परमात्मा सबसे मिला हुआ सबको धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे, जैसे उपदेश करने हारे श्रोताओं में प्रीति करते हैं वैसे हमारे दोनों को आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को धारण करें।

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधि या क्षीर या मिष्टान्न प्राशन करें— तत्पश्चात्—

अहं भो अभिवादयामि ॥*

अर्थ :—मैं अमुक आपको प्रणाम करता हूँ वा करती हूँ। इस वाक्य को बोलके दोनों वधू वर, वर व वधूके माता पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें, पश्चात् सुभूषित होकर शुभासन पर बैठ के वामदेव्यगान करके उसी समय ईश्वरोपासना करनी चाहिए—उस समय कार्यार्थ आए हुए सब पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर, पिता, आचार्य और पुरोहित आदि से प्रार्थना करें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥

अर्थ :—आप लोग इन दोनों के लिए स्वस्तिवाद कहिए—

तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा उनके अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदपठित हों तो वे ही दोनों **स्वस्ति वाचन** का पाठ बड़े प्रेम से पाठ करें पश्चात् कार्यार्थ आए हुए स्त्री पुरुष सब—

अर्थ :—हे विद्वानों ! आप हमको निश्चित करके जानो कि अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थाश्रम में हम एक दूसरे को स्वीकार करते हैं कि

---

* इससे उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिए है। नित्यप्रति स्त्री पुरुष, पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि प्रातः सायं और अपूर्व समागम में जब जब मिलें तब तब इस वाक्य से परस्पर वन्दन करें।

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ।।

अर्थ :—संसार का रक्षक भगवान् इनका अत्यन्त कल्याण करे इस वाक्य को बोले, तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता पिता, चाचा, भाई, आदि पुरुषों को तथा माता, चाचा, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें। तत्पश्चात् वधू वर क्षीर आहार और विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ होकर शास्त्रोक्त रीति से विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भ स्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह करने आया हो तो वह जहाँ जिस स्थान में जाकर विवाह करने के लिए उतरा हो उस स्थान में गर्भाधान करे, पुनः अपने घर आने पर पति, सास, श्वसुर, ननन्द, देवर, देवराणी, ज्येष्ठ, जिठानी आदि कुटुम्ब कें मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें, सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर बर्तें और मधुर वाणी, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न और वधू को सन्तुष्ट रक्खें। तथा वधू सबको प्रसन्न रक्खें। वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्ते तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलने से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे—तथा वर भी स्त्री की सेवा प्रसन्नता में तत्पर रहे।

।। इति परिशिष्टम् ।।

उप परिशिष्टम्

वर के गुण

कुलं च शीलं च सनाथता च ।
विद्या च वित्तं च वपुः वयश्च ।।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया,
कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ।।

वर के दश दोष

उन्मत्ताः वृत्ति हीनाश्च तथा पस्मार दूषिताः ।
दूरस्थाः, कुष्ठिनो, मूर्खा, मोक्षमार्गानुसारिणः ।।१।।
शूरा, अवेद्याः, निवृत्ताः दश दोषयुतावराः
तथाषण्दाश्च पतिताः चक्षुः श्रोत्रविवर्जिताः ।
वर्जनीयाः प्रयत्नेन कन्यादाने न संशयः ।।२।।

"संस्कार रत्नमाला"

वाग्दानः—

सगाई के सम्बन्ध में स्वामीजी ने कुछ नहीं लिखा है, क्योंकि यह कोई संस्कार नहीं है किन्तु विवाह होने से पूर्व वर वधू के शील स्वभाव और योग्यता आदि जानने के बाद विवाह सम्बन्ध स्थिर करने के लिए लड़की का पिता लड़के के पिता को कुछ भेंट देता है इसी को सगाई या टीका कहते हैं । इसमें जैसा जिसके यहाँ आचार है उसके अनुसार कुछ द्रव्य नारियल तथा वस्त्र के साथ-साथ मिष्टान्नादि देते हैं । बस इस रस्म के बाद ही विवाह सम्बन्ध पक्का हो जाता है क्योंकि अब ये दोनों पक्ष परस्पर वचनबद्ध हो जाते हैं । इसी को वाग्दान भी कहते हैं—

वाग्दान के समय निम्नलिखित मंत्रों को पढ़े

ओं समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः, समानमस्तु वो मनो यथावः सुसहासति ॥१॥

ओं प्रसुग्मतांधियसानस्य साक्षिणंवरेभिर्वरां अभिसु प्रसीदतः
अस्माकमिन्दुउभयं जुजोषति यत्सौभ्यस्यान्वव बुबोधति ॥२॥

ओं हिं कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छती मनसाभ्यागात् ।
दुहा मश्विभ्यां पयोअघ्न्येयं सा बर्धतां महते शोभनाय ॥३॥

ओं समिद्धस्य श्रयमाणः परस्ताद्ब्रह्मवन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मे दमति वाधमान उच्छ्यस्व महते सौभगाय ॥४॥

ओं वनस्पते शत वल्शा शोविरोह सहस्र वल्शाविव यं सहेम ॥५॥

यं त्वा दंदुर्देवानामुपसख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते नदाय ।
नृमिस्तवानों मनुधामपूर्वं प्रगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥६॥

ओं अस्य विवक्षुमनः प्रस्थिवस्येन्द्रं सोमस्य वर भासुतस्य ।
स्वस्ति दामानः सभादय स्वार्वाची नोरेवते सौभगाय ॥७॥

ओं धृतादुलुप्तं मधुमत्सुवर्णं धनंजये घरुणं धराष्णु ।
ऋणं न व्यत्वा दधुराश्च कृष्णाघरोह मा महते सौभगाय ॥८॥

वाग्दान के समय निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़े—

लग्न पत्रिका (टेवा)

वाग्दान हो जाने पर विवाह से ७, ९ या ११ दिन पूर्व लड़की का पिता या संरक्षक लड़के के पिता के पास एक पत्र भेजता है। जिसमें कुछ मांगलिक श्लोक एक दो मंत्र विवाह कुण्डली विवाह तिथि दिन, मास, सम्वत् इत्यादि सब विवरण लिखा रहता है उसे लग्न या लग्न पत्रिका कहते हैं। इन लग्न पत्रिका के भेज देने पर ही दोनों तरफ बड़ी चहल पहल गाना बजाना आदि होने लगता है।

संस्कार विधि से इन लोकाचारों का उल्लेख न होने पर भी प्रायः प्रत्येक आर्य परिवार में ये कृत्य होते ही हैं। अतएव इन बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

उबटना (उद्वर्तन)

विवाह के कुछ दिन पूर्व जो (वान) बैठने की रीति है जिसमें वर वधू उबटना मल कर स्नान करते हैं यह (प्रयोग रत्न) पृष्ठ ११ पर लिखे—

"ततो वैवाहिके शुभे मुहूर्तें वधू वरयोस्तैत्त हरिद्रारोपणादि यथा चारं कार्यम्" वाक्य के आधार पर है।

इससे शरीर कोमल वा स्वच्छ हो जाता है–यह भी लोकाचार है।

कन्यादान में उपवास

क्या कन्यादान उपवास करके करना चाहिए ?

अनेक देशों में यह प्रथा है कि कन्यादान के दिन कन्यादान के अधिकारी ब्रत से रहते हैं—इसका आधार व्यास स्मृति का निम्नलिखित वाक्य हैं—

भुक्त्वा समुद्वहेत् हत्कन्यां सावित्री ग्रहणं तथा।
उपोषितः सुतां दद्यात् अर्थिनेऽर्थद्विजाय तु ॥१॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु भोजनं नेति काश्यपः।
कन्यादानं निशीथे चेद् दिवा भोजन मिष्यते ॥२॥

इस विषय में अन्य भी प्रमाण लिखे जा सकते हैं।

तिलकदान

विवाह से पूर्व फलदान या तिलक दान या लड़का पक्का करने की रस्म भी प्रायः की जाती है, इसके बाद सगाई की जाती है तथा सगाई के साथ ही मिलनी भी करते हैं। फिर द्वार पूजा, विवाह, खाण्ड कटोरा या पूर्णपात्र प्रदान व विदा यह लोकाचार किए जाते हैं तथा विवाह के लिए प्रस्थान के समय (घुड़चढ़ी) भी करते हैं। इन सब रस्मों को मनाने के लिए आर्य समाज ने कोई विधि उपस्थित नहीं की है। जब तक (विधि) न बनेगी तब तक वही पौराणिक पण्डितों का विधि-विधान चलता रहेगा। क्योंकि लोकाचार का परिपालन न करो तो

कन्यापक्ष की स्त्रियाँ कहती हैं कि (पण्डित) को विवाह कराना नहीं आता, अतः इस उपाधि को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ ईश्वर स्तुति, शिवसंकल्प सूक्त, पुरुष सूक्त तथा ५-५ मन्त्र स्वस्ति वाचन व शान्ति करण के बोले व यज्ञ करें।

वर के तिलक लगाते समय **'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः'** पर मन्त्र पढ़े। **ओं नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो०** यह मन्त्र भी बोले। इसी प्रकार खेत, वटहरी, मढ़ा (मण्डप) धरवा, चौक पूजन, कुवाँ पूजना, कँगना आदि लोकाचारों का परिष्कृत रूप माताओं को समझा कर फैली हुई अविद्या व मिथ्याचारों को दूर करना प्रत्येक आर्य पण्डित का कर्त्तव्य है :

मिलनी या नौतनी (निमन्त्रणी)

कन्या पक्ष के मनुष्य विदा होने से पूर्व (अर्थात् बढ़ार के दिन सायं ३ बजे) वर पक्ष वालों की प्रेम निमंत्रण देने के लिए जनवांसे में (जहाँ बारात ठहरी होती है) कुछ मीठा तथा २।। सेर चने की दाल आदि (जैसी चाल हो) लेकर जाते हैं और वहाँ परस्पर एक दूसरे के गुणानुवाद में श्लोक आदि बोलते हैं। इसी समय परस्पर प्रत्येक का परिचय भी कराते हैं। सुना जाता है कि किसी समय पण्डितों में शास्त्रार्थ भी हुआ करते थे। आजकल भी इस दिन वेद प्रचार किया जाता है, यह प्रथा भी बहुत पुरानी है, कई लोग परस्पर रोली आदि से होली सी खेलते हैं परन्तु यह निन्दिताचार है। पूर्व देश में "द्वार पूजा" भी एक आचार हैं—इसी समय वर की योग्यता भी परीक्षित होती थी।

सप्तपदी का सारांश पद्यों में—

आर्य्ये ? भव त्वमिष एकपदी विनीते
सा मामनुव्रज यथा परमेश्वरस्य।
कारूण्यतः प्रतिपदं जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहु सुतानपि भूतलेस्मिन् ॥१०॥

उज्जें भवाऽमृतलते ? द्विपदीयथावत्
सा मामनुव्रज यतः सकलेष्टदस्य ।
संमाननान्निजगृहे जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि सभ्यवृत्तान् ॥११॥

रायेनिधेहि चरणं महिते ? तृतीयं
पश्चादनुव्रज च मां विधिवत्प्रसादात् ।
येनात्र विश्वबलये जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि वेद वेतॄन् ॥१२॥

तुर्यं पदं प्रतिनिधेहि मयोभवाय
धर्माय मां पुनरनुव्रज सभ्यवृत्ते ? ।
यस्मादिह प्रतिपदं जरदण्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि धर्मभावान् ॥१३॥

तत्पञ्चमं प्रतिनिधेहि पदं प्रजार्थे
सा त्वं तथा भव यथा परमस्य पुंसः ।
संभावनात्प्रतिपलं जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि काव्यकतॄन् ॥१४॥

षष्ठं पदं कुरु पुरः सुखदे ? ऋतुभ्यः
सा मामनुव्रज यथा जगदीश्वरस्य ।
निर्देशतः प्रतिदिनं जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहु सुतानपि लोकमान्यान् ॥१४॥

सख्याय सप्तमपदं प्रविधेहिवामे ?,
पश्चादनुव्रज च मां भवसागरस्य ।
पाराय येन सकला जरदष्टयस्ताः,
विन्दावहैं किमधिकं तनयानऽभीष्टाम् ॥१६॥

न नूपुरो नापि सकङ्कणक्वणो न हारवल्ली न च केशकल्पना ।
तथा तु तं भूषयतेऽबलाजनं यथा सुवाणी परिभूषयत्यलम् ॥३॥

नवं दुकूलं मधुराक्षरोज्ज्वलं वचो विनीताचरणं च सर्वथा ।
विमुग्धमन्दस्मितमास्यकल्पनं समस्तभावेषु विभूषणायते ।।४।।

समानपत्नीषु सखित्वभावना शरीरनाथस्य गृहे यथायथम् ।
महत्त्वबुद्धिर्महतीषु सादरं विभावनीया किमतोनुशासनम् ।।६।।

न रूपगर्वः परिशिक्षिते ? त्वया कदापि कार्यः पतिगेहमेत्य तत् ।
न च त्रपा तत्र समस्त वर्तने कदापि हेया गुणएषयोषिताम् ।।१०।।

न मादकं ना रुचिरं न वाधकं न वासितन्नो बहुकाल वर्तितम् ।
पदार्थ जातं निज भोजनोत्सवे कदापि सम्पादयितव्यमण्वपि ।।१८।।

सुचिक्कणं स्वादु मिरीक्षणोचितं बलप्रदं बुद्धिकरं त्वया सुते ।
विधेयमारात्पतिगेह सङ्गमे समस्तभावेन पदार्थ साधनम् ।।१९।।

निजस्य पत्युः शयनाय सादरं स्वयं विधेयं नवमासनं त्वया ।
पुनश्च सुप्ते सति पादसेवनं सदा सुते कार्यमलभ्य सौख्यदम् ।।२०।।

'कन्या पक्ष की ओर से स्तुति पद्य'

खद्योत द्यु ति मातनोति सविता जीर्णोर्णवाभालय
च्छायामाश्रयते शशी, मशकता मायान्ति तारादयः ।
इत्थं वर्णयतो नभस्तव यशो यातं स्मृते र्गोचरम्
यत् त्व स्मिन् भ्रमरायते शिवमते ! वाचस्ततोमुद्रिताः ।।१।।

विद्या वृत्तियुताः प्रसन्न हृदयाः विद्वत्सु बद्धादराः,
श्री नारायण पाद पद्म युगुल ध्याना वधूतां हसः ।
श्रौताचार परायणाः सविनयाः विश्वोपकार क्षमाः
जातायत्र भवादृशास्तदमलं केनोपमेयम् कुलम् ।।२।।

गुरुरेकः कविरेकः सदसि मघोनः कलाधरोऽप्येकः ।
अद्भु तमत्र सभायां गुरवः कवयः कलाधराः सर्वे ।।३।।

कुन्देन्दु सुन्दर रुचा तव कीर्ति मूर्त्या
ध्वस्तं गुहस्थ मपि सन्तमसं बलेन ।

व्योमापि तद् भयवशात् किल कीर्ति वन्धुं
चन्द्रं समाश्रित मयं न विधौ कलङ्कः ॥४॥

गांभीर्य जलधौ महोन्नतिगुणो मेरौ शशांके कला
स्तेजश्चण्ड रुचौ हरौ विजयिता कल्पद्रुमे त्यागिता ।
चातुर्यं चतुरानने शशधरे शीघ्र प्रसादोगुणः
ते सर्वे पृथगेव सन्ति मिलिता स्त्वय्येव सर्वेगुणाः ॥५॥

अनिः सरन्तीमपि गेह गर्भात्कीर्ति परेषामसतीं वदन्ति ।
स्वैरं चरन्तीमपि च त्रिलोक्यां त्वत्कीर्ति माहुः कवयः सतीं नु ॥६॥

गत्वा हूय गृहागतेषु न कृतं पाद्यादिभिः सेवनम्,
स्थानं नैव निवेदितं सुविपुलं वाच्यं किमन्यत्परम् ।
छिन्न स्वल्प पलाशपत्र पुटकैः रात्रौ गृहे वञ्चिताः
तस्मा दाहित लज्जया पुनरहो वक्तुं न शक्ता यम ॥७॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरु रचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः,
नूनं कामबुधा चतुष्पद युता सन्तापकारी रविः ।
सिन्धुः क्षारतरः शशी च विकलः कामोऽप्यनङ्ग स्तथा ।
चित्तं चिन्तयते सदा गुण निधे ? कस्योपमा दीयताम् ॥८॥

उभय पक्ष साधारण पद्य

श्रुत्वाऽपि दूरे भवदीय कीर्ति
कर्णौ च तृप्तौ नहि चक्षुषी मे ।
द्वयो विर्वादं परिहर्तु कामः,
समागतोऽहं तव दर्शनाय ॥१॥

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरे ष्यतः
शुभस्य पूर्वा चरितै कृतं शुभैः ।
शरीर भाजां भवदीय दर्शनम्
व्यनक्ति काल त्रितयेऽपि योग्यताम् ॥२॥

वर पक्ष की ओर से स्तुति पद्य—

कन्या श्री रिवरूपिणी शुभवती शुद्धं कुलं भूतले,
वित्तं रौप्य सुवर्ण भूरि, विमला कीर्तिश्च दिग् व्यापिनी ।
भद्राणां चशिरोमणित्व मधुना लब्धानि पश्चामुना
सम्बन्धेन, भवादृशां पर महो रत्नानि लब्धानि किम् ।।१।।

यावद्यस्यमति विधावति परं तावद्धितेनोद्यते
भिः सीमो भवतो गुणार्णववरः पारं कथं प्राप्नुयाम् ।
यावन्तस्तु गुणाः श्रुति—मम गता स्तावन्तएवोदिता :—
क्षन्तव्यं द्विजराज ! चापलमिदं सोढुः क्षमैवोचिताः ।।२।।

यैः कीर्त्याधवली कृतं त्रिभुवनं श्वामी कृतं चाम्वरम्,
धूमैः रुचरसंभवैः प्रतिदिनं दानैः द्विजास्तोषिताः ।
विद्यासंस्कृतया गिरा प्रतिदिनं यैस्तोषिताः पण्डिताः
तैर्भक्त्या विनिमन्त्रितास्तदधुनाधन्या धरण्यां वयम् ।।३।।

कन्यारत्न परिग्रहेण भवतां जातः प्रसन्नोवरः,
सम्बन्धी बहुवस्त्ररत्न तुरगैः सन्तुष्टतां प्राप्तवान् ।
ते तुष्टा बहुभोजनैः रसमयैः माधुर्य वाद्याविभिः,
भृत्याः, हर्ष तरङ्गितैश्च विविधैः स्त्रीणां वचोविभ्रमैः ।।४।।

अस्मादभिर्यदभोजिगेह विरलं सातं स्तुमस्तवकथम्
कन्यारत्न मदाय्यलङ्कृतमिदं प्राणादपीष्टं सृतौ ।
यावद् वित्तमकारिमित्र ! भवतासेवान्न पानादिभिः,
धातोऽसौ जयताद्यदीय कृपयासम्बन्धिनः स्मोवयम् ।।५।।

सद्विधा विनयेन सूनृतगिरा स्वावासदानेन च
स्वाद्वम्भोभिः रनन्यभोग्य रचना सम्भार सङ्कल्पनैः ।
आतिथ्यं यदकारि पूर्वदिवसे तेनैवतुष्टावयम्
भक्ति चावतनीं विलोक्यभवतां वक्तुं न शक्ताः वयम् ।।६।।

न कल्पयन्ति तावकं यशो निशम्य के शिरः
पयः पयोधि निर्मलं द्विजेन्द्र जिज्जगत्त्रये
अतः पितामहो विभुर्भुजङ्गमेश्वरस्यनो
चकार शब्द धारकान् धरा विधात शङ्कया ॥७॥
त्वत् कीर्तिव्रततिः समीर पदवी मासाद्यलोकत्रयम्
मञ्च व्याप्यचिरं वभार कलिकाः नक्षत्ररूपेण याः
तासां प्रस्फुट मिन्दुरेक कुसुमं त्रैलोक्य मादीपयन्
नो जाने विकचासु तासु भविता सर्वासुकादृक् फलम् ॥८॥

कङ्कण मोचन

विवाह के पश्चात् जब कन्या वर के घर पर जाती है, तब एक दिन परस्पर कङ्गना खोलने का बहुत प्राचीन आचार है।

महाकवि भवभूति ने—भी—(**कङ्कण मोचनाय गच्छामि**)

"कथमागृहीत कमनीय कङ्कणः तव मूर्ति मानिव महोत्सवः करः इत्यादि लिखा है।

मुकुट धारणः—

आजकल यह एक प्रथा ढकोसला बन गई है। हां वर को इतर व्यवच्छेद के लिये सिर पर कोई चिन्ह विशेष धारण अवश्य करना चाहिए॥

घुड़ चढ़ी

यह राजपूतों की प्रथा थी अब सार्वजनिक हो गई है। पर विवाह का कोई अङ्ग नहीं। इसी प्रकार "आर्ती" आदि रूढ़ियों को भी जानो।

पूर्णाहुति विचार

विवाह यज्ञ में पूर्णाहुति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह वृद्धों का वचन है कि :—

विवाहे व्रत वन्धे च शालायां चौल कर्मणि।
गर्भाधानादि संकारे पूर्ण होमं न कारयेत्—इत्यादि—

औरन पूर्णाहुति विधायक दृढ़ प्रमाण ही उपलब्ध होता है फिर भी यदि पूर्णाहुति करनी ही हो तो निम्नलिखित मन्त्रों से करनी चाहिए।

ओं पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत वस्नेव विक्रीणा वह इषभूर्ज ँ शतकुतो स्वाहा।

ओं पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णा पूर्णमुदच्यत्
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवावशि ष्यते ॥२॥

ओं सर्व वै पूर्ण ँ स्वाहा—इस मन्त्र को तीन बार पढ़कर तीन आहुति दो।

ओं वसोः पवित्रमसि शतधारं बसोः पवित्र मसि सहस्राधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातुवसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।

ओं तनूपा अग्नेऽसि तत्वं में पाहि। ओं आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि। ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चों मे देहि॥

ओं अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आप्तण।
ओं मयि मेधाँ मयि पूजांम मस्याग्निस्तेजो दधातु।
ओं मयि मेधां मार्य प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु।
ओं मयि मेधां मयि प्रजां मार्य सूर्यो भ्राजोद धातु।
ओं यत्ते अग्ने तेजस्वेनाहं तेजस्वी भूयासम्।
ओं यत्ते अग्नेर्वच स्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्।
ओं यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम।

इसके अनन्तर—

ओं संस्रव भागाः स्थेष्ठाः वृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परि धेयाश्च देवाः। इमां वाच मभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् र्बाहिषि मादवध्वम् स्वाहा। इस मंत्र को बोलकर संस्रवाहुति दे तदन्तर दान दक्षिणा आदिदे—

फिर शान्ति पाठ करे। पुनः सब मिलकर वामदेव्य गान करे॥

वर बधू को वेद मन्त्रों द्वारा आशीर्वाद

ॐ तेन भूतेन हविषाऽय (वरः) माप्यायतां पुनः।
जाया याऽस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि बर्धताम् ॥१॥
ॐ अभिवर्धतां पयसाऽभिराष्ट्रेण वर्धताम्।
रय्या सहस्र बर्चसे मौस्ता मनुपक्षितौ ॥२॥
ॐ त्वटा जाया मज नयत् त्ष्वटा स्यै त्वां पतिम्।
त्वष्टा सहस्र मायूँषि दीर्घ मायुः कृणोतु वाम् ॥३॥

पद्यों द्वारा आशीषः

स्वस्त्यस्तुते कुशल मस्तु चिरायुरस्तु
गोवाजिहस्ति धनधान्य समृद्धि रस्तु।
ऐश्वर्य मस्तु वलमस्तु रिपुक्षयोऽस्तु
सौभाग्य वृद्धि सहिता हरिभक्तिरस्तु॥

सूर्यः शौर्यगुणं शशी कुशलतां सन्मङ्गलं मंगलो
बुद्धिं तत्व विदः बुधो वितरता ज्जीवः शुभोज्जीवनम्।
शुक्रः शुक्लतरं यशोतिविपुलं मन्दोऽप्य मन्दश्चिरम्
राहु र्बाहुबलं महार्घ्यमहितः केतुर्महीकेतुताम्॥

वर वधू—युगुल की शुभ कामना

ॐ इहेमा विन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती।
मोदमानौस्वस्त कौ विश्वमायुर्व्य श्नुतम॥

अनुवाद

धर्म कर्म में नव दम्पति की हो मति दृढ़तर।
काय वाक् सम सदा रहें वे अनुरक्त परस्पर।
हे सुख वर्धक इन्द्र! देव आशीष दीजिए
हों शतायु, सन्तान सौख्य धन दान कीजिए।
ओं इमां त्व मिन्द्र मीदवः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

अनुवाद

इस गृहिणी को शक्तिदान दो विश्वविधाता
रहे सुहागिन सदा बने बीरों की माता ॥
कर ऐश्वर्य प्रदान दूर इनसे रखिए दुःख,
दसों पुत्र ग्यारहवां पति सब मिल भोगें सुख ।

दम्पती को आर्शीर्वाद

ॐ अभिवर्द्धताँ पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्त्र वर्चसे मौ स्तामनुपक्षितौ ।

अनुवाद

सबल बनें बलवर्धक घृत दुग्धादि पान से ।
उन्नत हो अनुकूल स्वीय राष्ट्रीय विधान से
रखना नव दम्पति पर हे प्रभो ! सदा कृपाकर
दीप्तिमान रत्नों से इनका भरा रहे घर ।
ओं इहेमा विन्द्र ! संनुद चक्रवाकेव दम्पती ।
इहैवस्तं मां वियोष्ट विश्व मायुर्व्यश्नुतम् ॥

अनुवाद

प्रभों ! न ये ! वर वधू परस्पर कभी विलग हों ।
गृही धर्म पालन में अविचल और सजग हों ।
सब हो शतायु दीर्घायु रहें तेरे गुण गाते ।
पुत्र पौत्रों सहित सदा आनन्द मनाते ।

वधू को आशीर्वाद

ॐ सम्राज्ञी त्वं श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्राँ भव ।
ननन्दारि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ।

अनुवाद

पत्नी पतिगृह की पटरानी, है सब कुछ उसके आधीन
दासी या कि सेविका उसको, बतलाने वाले मतिहीन,
सास ससुर का सम्राज्ञी सम, करना देवि सदा सत्कार
ननदों और देवरों पर भी, रखना प्रेमपूर्ण अधिकार ॥

विधवा विवाह हो सकता है या नहीं ?

सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने पृष्ठ ११४ पर लिखा है कि :—

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः, ।

अर्थात् यदि अक्षत योनि स्त्री विधवा हो जाय तो पति का निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है। इसके सिवाय विधवा और विधुर दोनों के लिए ऋषिदयानन्द नियोग का विधान करते है, विधवा विवाह या विधुर विवाह का नहीं ।

किन्तु वर्तमान समय में नियोग की बात भी मुँह पर लाना व्यभिचार जैसा पाप है । अतः नियोग का प्रचलन अत्यन्त असंभव है, वह बहुत ऊंची चीज है । अतः इस समय विधवा विवाह या विधुर विवाह किया जा सकता है । जैसा कि लिखा है :—

सतु यद्यन्य जातीयः पतितः क्लीब एव वा ।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपिवा ।।
ऊढ़ापि देया सान्यस्मै सहाभरणभूषणा ।।

(पाराशर स्मृति एवं निर्णय सिन्धु)

ऋग्वेद में भी यह मंत्र आता है कि :—

कुह चिद्दोषा कुह वस्तो रश्विना, ।
कुहाभिपत्वं करतः कुहोषतुः ।।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरम् ।
मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ।।

आचार्य सायण व दुर्गाचार्य ने इस मंत्र का अर्थ करते हुए स्पष्ट ही देवर के साथ पुन विवाह करने की अनुमति प्रदान की है—अनेक विद्वान् इस मन्त्र को नियोग परक लगाते हैं, पर पुन विवाह परक अर्थ सरल है नियोग के अर्थ में कुछ खींचातानी करनी पड़ती है ।

विधवा विवाह के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर :—

प्रश्न :—क्या हमारे बाप दादा मूर्ख थे जिन्होंने विधवा विवाह चालू नहीं किया ?

उत्तर :—हमारे बाप दादा तो सदाचारी थे, इसलिए विधवा विवाह चालू नहीं किया। हम लोग सदाचारी नहीं है स्वयं विधवाओं को पथ भ्रष्ट करते रहते हैं। पहिले जिसके घरमें बहू अथवा बेटी विधवा हो जाती थी उसकी माता और सास स्वयं श्रृंगार नहीं करती थीं। तथा अश्लील गीत नहीं गाती थी, अब राग-रंग करती रहती है।

प्रश्न :—कोई विधवा नहीं कहती कि मेरा विवाह करो, इस लिए विधवा विवाह की आवश्यकता नहीं है ?

उत्तर :—क्वारी लड़की कब कहती है कि मेरा विवाह करो आप उसका ही विवाह क्यों करते हैं। विवाह कर देने के बाद वह ससुराल जाने को भी नहीं कहती है, आप गौना (मुकलावा) करके उसको ससुराल क्यों भेजते हैं। वह तो जाते समय खूब रोती है। तथा स्त्रियों में लज्जा अधिक होती है इसलिए वह अपने मुँह से ऐसी बात नहीं कह सकती है।

प्रश्न :—विधवा विवाह चालू होने से वर्णसंकरता फैल जायगी।

उत्तर :—आज विधवा विवाह चालू नहीं इसलिए धनाढ्य लोग तो विधुर हो जाने पर धन के जोर से अपनी बेटी या पोती के समान क्वारी कन्याओं के साथ विवाह कर लेते हैं उनके घरों में नौकरों के द्वारा भी से सन्तानें पैदा होती हैं। जिनसे वर्ण-संकरता फैल रही है— पर सवर्ण में विधवा विवाह होने से वर्ण संकरता नहीं फैलती है।

प्रश्न :—विधवा विवाह और गुप्त सम्बन्ध में क्या भेद है।

उत्तर :—सम्बन्धियों में विधवाएँ व्यवहार में साथ चली जाती है इस लिए नाते में जाने वाली अविवाहित—स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री छोड़ सकती है। विधवा विवाह पञ्चों की साक्षी से होता है

शास्त्रानुसार परस्पर प्रतिज्ञाएँ होती हैं । अतः जीतेजी पुरुष को स्त्री का तथा स्त्री को पुरुष का छोड़ना पाप है ।

(१)देशकाल के अनुसार अपनी विरादरी में विधवाविवाह चालूकरने की अत्यन्त ही आवश्यकता है । कई शहरों में बड़े २ बुद्धिमानों ने गाजे-बाजे से विधवा विवाह करना शुरू कर दिया है । यदि आपके मन में दया और न्यायका नाम है तो जो विधवाएं ब्रह्मचर्य (शीलधर्म) का पालन करना कठिन समझ कर गृहस्था श्रम में प्रवेश करना चाहती हों उनको पुर्नविवाह करने की आज्ञा दे दीजिए-आपकी विरादरी में विधुर पुरुषों का विवाह क्वारी कन्याओ के साथ हो और विधवाओं के पुनः विवाह का विरोध किया जाय यह सरासर अन्याय है ।

(२) जबतक आप अपनी पंचायतों से विधवा विवाह करने की आज्ञा न देंगे, आपकी श्रेष्ठ जाति में भ्रष्टाचार और गर्भ हत्याएँ होती रहेगीं । तरुणावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन करना महा कठिन है इसलिए विधवाएँ बेचारी गुप्त रूप से पड़ोसियों द्वारा और जो घनाढय परिवार है वहाँ नौकरों चाकरों द्वारा इच्छा पूर्ति करती हैं । गर्भ रह जाने पर उनको खुशी मनाने की अपेक्षा सम्बन्धीव विरादरी के डर से तीर्थ यात्रा के बहाने उसे चुपचाप गिराना पड़ता है तथा अपूर्ण गर्भ गिराने में बहुत ही दुःख उठाना पड़ता है । निर्धनविधवाओं को पेट पूर्ति के लिए पथ भ्रष्ट होना पड़ता है । कई विधर्मियों की वीवियां बन रही हैं—क्या यह बातें आपकी आँखों से ओझल हैं ?

(३) पुरुष स्त्री के मर जाने पर यदि दुवारा विवाह कर सकता है तो, स्त्री भी पति के मर जाने पर दुवारा विवाह कर सकती है, विधवा विवाह होना उचित और न्याय संगत है तव ही अनमेल विवाह तथा कन्या विक्रय वन्द हो सकता है ।

प्रश्न :—क्या हीन वर्ण की कन्या का ग्रहण हो सकता है ।

उत्तर :—यदि उच्च वर्ण वाला चाहे तो हीन वर्ण की कन्या से भी शादी कर सकता है—जैसा कि मनुस्मृति में लिखा है :—

अक्षमाला वसिष्ठेन संपृक्ताधम योनिजा ।
शार्ङ्गेण मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ।।
एता श्चान्याश्च लोके ऽस्मिन्नपकृष्ट प्रसूतयः,
उत्कर्षंयोषितः प्राप्ताः स्वैःस्वैः भर्तृ गुणैः शुभैः ।।

तथा यह प्रसिद्धि भी है' 'कि कन्यारत्नं दुष्कुलादपि' अतः अपने से हीन वर्ण की कन्या के साथ विवाह किया जा सकता है ।

आर्य व पौराणिक विवाह पद्धति का अन्तर

यह संस्कार वरसत्कार तो मथा वत् एक सा है पर विष्टरदान में भेद हैसनातन धर्म पद्धति में दो वार विष्टर दान होता है, पहला'—साधु भवान्, इत्यादि' मंत्र के वाद दूसरा पाद्य के बाद, क्योंकि इनके यहाँ विष्टर नाम कुशा का है वह एक बार पैर के नीचे दबाली जाती है हैं। दूसरी वार दूसरे पैर से नीचे दबालेते हैं, पर यह कोई उचित बात नहीं।

मधुपर्क का परिमाण :—

सर्पिरेक गुणं प्रोक्तं शोधितं द्विगुणं मधु ।
मधुपर्क विधौ प्रोक्तं सविषा च समं मधु ।।

इस मधुपर्क विधिके विषय में भी कुछ मतभेद है वह यह कि सनातन धर्म की पद्धतियों में मधुपर्क पात्र को लाल डोरे से लपेटते है। फिर वर को देते हैं। तदनन्तर वर से चारों दिशाओं में छीटें नहीं लगवाते। किन्तु केवल जमीन पर तीन वार छीटें लगवा लेते हैं। तथा फिर उस मधुपर्क को लड़की को दिखलाया जाता है। तदनन्तर वर ३ तीन भाग कर उसका का भक्षण करता है पर आर्य विवाह पद्धति में चारों दिशाओं में छीटें लगवाए जाते हैं। तथा वर उसका प्राशन करता है।

गोदान के समय भी यह लोग गौ नहीं दिलवाते किन्तु वर के हाथ में कुशतृण दे देते हैं।—तथा वर—

ॐ मातारुद्राणां दुहिता वसूनाँ स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागा मदितिं वधिष्ट ।

इस मंत्रको बोलकर वर तृण छोड़ दे और समझे कि हमारे पाप दूर हो गये। तदनन्तर गोदान करें। अर्थात् उस विधि में यह मन्त्र अधिक है।

तदनन्तर आर्य पद्धति में विना अग्न्याधान के ही कन्यादान किया जाता है—पर उनकी विधि में पहले अग्निस्थापन है—जो कि

"अग्नि दूतं पुरोदधे हव्यवाह मुपब्रुवे । देवाँ आ सदयादिह ॥
यजु० २२ । २७ ।

इस मंत्र को बोल कर किया जाता है।

मेरी सम्पति में अग्निसाक्षिक ही कन्यादान होना चाहिए—अतः

यदि—ॐ भूर्भुवः स्वः स्वर्द्यौरिव भूम्ना इत्यादि मन्त्र से अग्नि प्रज्वलित करली जाय तो ठीक है। यह अग्नि प्रज्वलन वर द्वारा ही कराना चाहिए।

कन्यादान में सनातन धर्म की पद्धतियों में—शाखोच्चारणका बृहत् रूप दिखाया गया है वरपक्ष का पण्डित तीन बार तीनों पीढ़ियों का नाम बोलता है इसी प्रकार कन्या पक्ष का पण्डित भी बोलता है। साथ ही वे लोग निरर्थक श्लोक भी पढते हैं। जिनमें कृष्ण शिव आदि की स्तुति होती है। साथ ही कन्या दान के समय वर और कन्या के हाथ को कलावे से बाँध देते हैं। यह हेय है, हाथ पीले कर देते हैं शंख से दूर्बा अक्षत पुष्प चन्दन मिश्रित जल डालते जाते हैं। साथ में हिरण्य या रजत भी कन्या के हाथ पर रख देते हैं—यह लोकाचार उपादेय है। कन्या-दान करने वाले माता-पिता का भी उस समय ग्रन्थि बन्धन कर दिया जाता है—कन्यादान लेते समय वर :—

ॐ कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्

कामोदाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥

इस मन्त्र को भी पढ़ता है।

यह भी एक आश्चर्य की बात है कि कन्या स्वीकार करने से पूर्व ही 'जरांगच्छ' इत्यादि मन्त्र सनातन धर्म पद्धतियों में वर पढ़ता है तथा कन्या को वस्त्र देता है।

तथा 'समञ्जन्तु' यह मन्त्र भी 'वरकन्या' को आमने सामने कर के वर से बुलवाया जाता है—जो कि हमारी पद्धतियों में खड़े होकर प्रतिज्ञार्थ वर-कन्या द्वारा बोला जाता है इस विषय में हमारी पद्धति ही ठीक है। तदनन्तर 'अघोर चक्षु:' इत्यादि मन्त्र के बाद सनातन धर्म पद्धतियों में निम्नलिखित मन्त्र अधिक है—

ओं सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयोऽग्निष्टे पति स्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

ओं सोमो ऽ दददन्धर्वाय गन्धर्वो ऽददद् अग्नये। रयिश्च पुमाँ श्चादा॰ दग्निर्मह्यमथो इमाम्॥

महर्षि दयानन्द ने "यदै षि॰" "अघोर चक्षु:॰", "सानः पुषाः" इन तीन मंत्रों से हस्तादान अर्थात् वर द्वारा कन्या का हाथ पकड़कर मन्त्र बोलना लिखा है। पर पौराणिक पद्धतियों में इन मन्त्रों से एक दूसरे की ओर देखना 'परस्पर समीक्षण' लिखा है—तदनन्तर '**ॐ प्रमे प्रतियानः**' यह मन्त्र आर्य पद्धति में अधिक है जो अन्य पद्धतियों में नहीं मिलता पर होना चाहिए।"

तदनन्तर पौ॰ प॰ में ब्रह्मा का वरण है और ऋषि पद्धति में पुरोहित स्थापन है।

ब्रह्मा के वरण करते समय यजमान कलावा बांधे और '**ॐव्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्य माप्यते।** यह मन्त्र पढे तथा ब्रह्मा—

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद विसीमतः सुरुचो वेन आवः। स वुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनि मसतश्च विवः।

य जु॰ १३। ३॥

इस मन्त्र को पढ़े ।

इसके आगे होम दोनों मानते हैं पर उसकी विधि ठीक ठीक महर्षि ने लिखी है । उस विधि में समिधा व घी कम से कम काम आता है ।

त्वन्नो अग्ने इत्यादि—आठ ८ मन्त्रों को सर्व प्रायश्चित्त होमों केनाम से पौराणिक पद्धति कारों ने लिखा है । सनातन धर्म पद्धतियों में 'ॐ पितरः' इत्यादि मन्त्र के बाद प्रणीतोदक स्पर्श लिखा है—वह चिन्त्य है ।

राष्ट्रभृत् जया होम, और अभ्यातान होम के पश्चात् ८ विशेष आज्याहुतियाँ **'ॐ अग्निरैतु'** इत्यादि मन्त्रों से लिखी है । पर पौ० प० में सिर्फ ५ ही आहुतियों पाँच मन्त्रों से केवल **ॐ परं मृत्योः अनु परेहि पन्याम्"** इत्यादि मन्त्र तक ही दिलायी जाती हैं । साथ ही—**परं मृत्योः'** इस मन्त्र को पढ़ते समय अपने और अकेली वधू या वर वधू दोनों के बीच में कपड़ा तान देते हैं—जिसे (अन्तः पट) कहते हैं जिसका भाव यह कि यह मृत्यु देवता के लिए आहुति है इसलिए वधू वर इसे न देखे ।

कहीं कहीं बधू को वस्त्र से वेष्टित कर देते हैं जिससे उसे अन्य कोई भी नदेख सके—कैसा अज्ञान है ? तदनन्तर पौ० प० में (लाजा होम, पाणि ग्रहण, अश्मारोहण गाथा गान, परिक्रमा, यह क्रम है पर हमारी पद्ध तियों में पाणिग्रहण, अश्मारोहण लाजा होम परिक्रमा गाथा गान यह क्रम है जो युक्ति संगत है ।

'पाणिग्रहण में हमारे यहाँ ७ मन्त्र हैं । पर इनके यहाँ केवल दो ही मन्त्र हैं वे हैं—**'ॐ गृभ्णामि ते०'** और (अमोऽ हमस्मि) इनके यहाँ (गाथा गाना) अश्वारोहण' के अनन्तर **'ॐ सरस्वती'** इत्यादि मन्त्रों से किया जाता है पर हमारे यहाँ परिक्रमा के आरम्भ से पूर्व । तथा गाथा गान के मन्त्र से वर वधू का हाथ पकड़ कर परिक्रमा करता है । प्रदक्षिणा के समय हमारे यहां दो मन्त्र पढ़े जाते हैं इनके यहां केवल एक **ॐ तुभ्यमग्ने०** इत्यादि ही ।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि (राष्ट्रभृत् होम) से पूर्व जो ५ मन्त्र हैं उनके बोलते समय वधू वर का अन्वारम्भण (स्पर्श) करती हुई आहुति देती है पर पौ० प० में यह नहीं है।

वर वधू का ग्रन्थि बन्धन के साथ परिक्रमायें सनातन धर्म की पद्धतियों में भी नहीं लिखनीं है हमारे यहाँ तो इस समय ग्रन्थि बन्धन है ही नहीं वह (सप्तपदी) के समय किया जाया है पर पौ० प० (आसन परि-वर्तन) इस समय करा दिया जाताहै जोकि हमारे यहाँ (सप्त पदी) केवाद लिखा है फेरों के बाद कहीं बिछुआ दबाना, महावर लगाना यह लोका-चार भी किया जाता है पर यह लोकचार ही है शास्त्रीय विधि नहीं।

परिक्रमाओं के वाद हमारे यहाँ केश स्पर्श है जो पौ० प० में नहीं पाया जाता—पर होना चाहिये।

तदनन्तर (सप्तपदी के मन्त्र भी सनातन पद्धति में अधूरे ही लिखे हैं। पर पूरे मन्त्रों से सप्तपदी करें। तदनन्तर कुछ समान क्रियाओं के बाद सूर्य दर्शन आता है जिसमें पौ० प० में यह विकल्प है किया है कि सूर्यन हो तो ध्रूव दिखावे पर हमारे यहाँ दोनों अनिवार्य हैं।

उत्तर विधिः

'पौ० पद्धतियों में उत्तरविधि नामक कोई विधि ही नहीं है—जबकि हमारे यहाँ पर एक पूरी विधि है। पौ० पद्धतियों में विवाह में पूर्णाहुति नहीं होती यह स्वीकार किया है फिर भी पं० रामदत्त प्रणीत मेहरचन्द लक्ष्मण दास लाहौर से मुद्रित विवाह पद्धति में पूर्णाहुति करने का निम्नलिखित मन्त्र लिख ही दिया है—और यह भी लिखा है कि—पूर्णाहुति करने का आधार है' अतः हम इसे लिख रहे हैं—

मन्त्र यह है :—

ॐमूर्धानं दिबो अर्रात पृथिव्यां वैश्वानरमृत आजान मग्निम्। कविं सम्राज मतिथिं जनाना मासन्ना पात्रं जनयन्त्त देवाः स्वाहा। इदमग्नये इदं न मम।।

तदनन्तर पौ० पद्धतियों में यज्ञ भस्म लगाने की विधि है। जैसेः— दक्षिण हाथ की अनामिका से भस्म लेकर (ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः) यह मन्त्र का अंश पढ़ कर ललाट में भस्म लगावें (कश्यपस्य त्र्यायुषम्) इससे ग्रीवा में, (यद्देवेषुत्र्या युषम्) से दक्षिण वाहुमूल में (तन्नो अस्तुत्र्यायुषम्) से हृदय पर भस्म लगावें।

इसी प्रकार वधू भी भस्म लगा सकती है पर मन्त्र में (तन्नो) की जगह (तत्ते) यह पाठ करना पड़ेगा। सुमङ्गली करण या सिन्दूर दान दोनों पद्धतियों में है। तदनन्तर यदि यजमान ब्राह्मण है तो आचार्य या ब्रह्मा को गौ को दक्षिणा में दे यदि क्षत्रिय है तो एक ग्राम दक्षिणा में दे यदि वैश्य हो तो एक अश्व दत्रिणा में दें। तथा यथा शक्ति इस ससय माली, कुम्हार, नाई, धोबी, भिक्षुक, संस्था आदि को दान करें।

चतुर्थी कर्म

चतुर्थी कर्म का अर्थं है कम से कम तीन दिन तक भूशयन व ब्रह्मचर्य रखने के वाद वर वधू का वंश प्रवर्तन की इच्छा से सन्तान प्राप्ति के लिए समागम व कर्म विशेष। यह कर्म कहीं-कहीं वधू के घर पर ही किया जाता था—इसी लिए क्षत्रियों में ४ दिन तक बारात ठहराने को आजभी रीति चली आती है। याग के बाद पुत्रो त्पत्ति क्रिया भी की जाती थी।

दक्षिणा व दान

पौराणिक पद्धतियों में दान तो पद पद पर है तन (९) ग्रह पूजन षोडशमातृ का पूजन (१६) ओङ्कार पूजन (५) अष्ठकुल मातृका, वास्तु पूजन (८) योगिनी पूजन लक्ष्मी पूजन (४) सप्तर्षि पूजन (७) विष्णु पूजन (४) कलश पूजन (४) मधुपर्क के बाद तथा गो दान के वाद दक्षिणा संकल्प कन्या प्रतिग्रह दोष निवृत्ति के लिए दान व दक्षिणा, भूयसी दक्षिणा, फिर कर्माङ्ग दक्षिणा, ब्राह्मण दक्षिणा, इस

प्रकार से प्रचुर धन कम से कम २०)२५) रु० प्रत्येक कार्य कर्त्ता कोमिल जाते हैं—पर आर्य समाज में २) या ५) से अधिक दक्षिणा नहीं मिलती—यद्यपि महर्षि दयानन्द ने सामान्य प्रकरण में स्पष्ट ही कार्य कर्त्ता, आचार्य या ऋत्विक के लिए कुण्डल, अँगूठी ५ वस्त्रों का देना लिखा है तथा दक्षिणा में कम से कम ८, आठ आठ गौएँ देने को भी लिखा है—पर इसे कोई पढ़ता नहीं खर्च करने की बात कोई सुनता ही नहीं, लोगों से दान की बात कहो तो कहते हैं कि क्यों जी ! क्या आप भी पूरे पौराणिक पण्डित हो गये ? यह कोई नहीं देखता कि तैत्तिरीय उपनिषद् में 'अ श्रद्धयादेयम्, श्रद्धयादेयम् श्रियादेयम् भियादेयम्' भी लिखा है ।

पतिव्रता का लक्षण

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी
भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ।
धर्मानुकूला क्षमया च धात्री
इमे गुणाः सन्ति पतिव्रतानाम् ।।

दान संकल्प

अद्य अमुक दिने अमुकतिथौ अमुकवत्सरे इमाँ दक्षिणाँ (एतावतीम्) नाना नाम गोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नटनर्तक गायकेस्यो दीनाऽनाथेभ्यांश्च दातु मह मुत्सृजे ।

अँगूठी पहनने का मन्त्र

ॐ सुचक्षा अहमक्षी भूयासम् सुवर्चा सुखेन, सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ।।

तिलक लगाने का श्लोक

भद्रमस्तु शिवं चास्तु महादेवः प्रसीदतु ।
रक्षन्तु त्वाँ सदा देवा सम्पदःसन्तु सर्वदा ।।

अथवा

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्य युक्तां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपहये श्रियम् ।

यह मन्त्र बोले ।

एक आम भूल

An ordinavy mistake

शिलारोहण करते समय वर को कन्या के दक्षिण भाग में आकर उत्तराभिमुख खड़ा होना चाहिये—तथा लाजा होम में फिर वर कन्या के बाम भाग में चला जाय, यही स्वामी जी के लेख का रहस्य है, पर अधिकतर लोग यहां भूल करते हैं । ऐसा नहीं करते अतः उन्हें इस भूल को परिहार कर लेना चहिये ।

ऋग्वेद का निम्न मंत्र बड़ी सुन्दर रीति से इस बात का वर्णन करता है ।

तमस्मेरा युवतयो युवाना संमृज्यमानाः परियन्त्यापः । तमक्रुभिः रिक्कभी रेवदस्मे विदाम निघ्मौ घृतर्निणिगप्सु ।

अर्थात् जैसे नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे ही उत्तम ब्रह्मचर्य तथा सव्विद्याओं से युक्त युवतियाँ उत्तम शुभ लक्षण युक्त विद्या वाले ब्रह्मचारी युवक को प्राप्त हों, और वे सुप्रकासित हो मर गृहस्थाश्रम के आनन्द को प्राप्त हों । इस मंत्र से यह स्पष्ट है कि उपयुक्त गुण वाले युवक और युवती परस्पर विवाद करें ।

वर वधू का तारतम्प

जीवन की रचना में और पूर्णता के कार्य में दोनों की देन तथा कार्य भिन्न-भिन्न है ।

ष्वभाव से ही पुरुष कठोर एवं बलिष्ठ होने से रक्षक तत्त्व हैं । श्री कोमल होने से विकासक शक्ति है । यदि पुरुष तेज का पुंज है तो स्त्री स्नेह का स्रोत है । पुरुष बाल-विक्रम का महासागर हैं तो स्त्री माया एवं ममता की मंदाकिनी हैं, पुरुष साहस का शिलीच्चम है तो स्त्री

धैर्य्य की धारिणी हैं। पुरुषों की तरह भले ही नारी ने बड़े-बड़े मैदान न जीते हों, किन्तु इन सब के पीछे सूत्र संचालन का कार्य करने वाली तो वही स्नेह, सेवा, श्रद्धा, ममता एवं वत्सलता की प्रतिमूर्ति नारी ही है। उसके उन कार्यो के पीछे नारी का महान उत्सर्ग एवं स्वार्थ त्याग छिपा हुआ है। नारी सदा ही पुरुष की प्रेरणा-स्थली रही हैं। पुरुष जो कुछ उसे देता है नारी उसे अपने शरीर के रक्त एवं प्राण से सींचकर, बढ़ाकर परिपुष्ट करके समाज को समर्पित करती है।

इसलिये कई बार जब कभी ऐसा वाद-विवाद सुनाई पड़ता है कि नर और नारी में कौन बड़ा ? तब हमें इस प्रश्न पर हँसी आती है। विचार दृष्टि से दोनों में न कोई छोटा है न कोई बढ़ा, किन्तु दोनों बराबर हैं। दोनों का समान महत्व हैं। संसार की रचना में दोनों के महत्व के कार्य और कर्त्तव्य हैं। पुरुष स्त्री के बिना अधूरा है और स्त्री पुरुष के बिना पंगु हैं। दोनों के संयोग से जीवन की पूर्णता हैं।

गुजरात के महान् कवि नानालाल ने नव वधू को 'अमर नंदिनी' शब्द से सम्बोधित किया है। यह 'अमर' शब्द प्रत्येक के हृदयांकित करने योग्य है।

वे नवबधू को सम्बोधित करके कहते हैं कि "तू अपने पति की प्रेरणा बन, उसको प्रभु के मार्ग में ले जा। उसके जीवन की विधात्री बन संसार-यात्रा में उसे पार उतारना।"

प्रदक्षिणा करते समय कौन आगे चले !

यह प्रश्न विवादास्पद है, अनेक महानुभाव चारों परिक्रमाओं में वर का ही आगे होना मानते हैं। क्योंकि ऋषि दयानन्द का ऐसा ही अस्पष्ट लेख है। किन्तु ऋषि दयानन्द का लेख गृह्य सूमों के आधार पर है तथा वहाँ "ताँत्रिः परिणीतां प्राजापत्यं हुत्वा।

(पार० ७ मखण्डिका १ मखण्ड) के अनुसार "परिणीता" शब्द से "परितः अग्नेर्नीता परिणीता" इस व्युत्पत्ति के द्वारा और हरिहर भाष्य

में "परिक्रमणं कुर्वन्तौ वधूवरौ।" इस व्याख्या के अनुसार वधू शब्द का पूर्व निपात होने से वधू का पुरोयायित्व सिद्ध है। अतएव गदाधर ने भी "वधूवरौ अग्नेः प्रदक्षिणं कुर्वन्तौ।" यह व्याख्या की है तथा प्रत्येक परिक्रमा में वधू का अग्रगामित्व निषेध करने के लिये पारस्कर ने "त्रिः परिणीतां" मे त्रित्व का विधान किया है। इसलिये चतुर्थ परिक्रमा में वर का पुरोगामित्व सिद्ध है।

यज्ञादि कार्यों में पत्नी वाम भाग में बैठे या दक्षिण भाग में ?

पत्नी को बाम भाग में बैठाने का तात्पर्य पत्नी को हृदय तुल्य बतलाना है। अतएव **"बामाङ्गे च विभाति भूधरसुता शैलापगा मस्तके"** इस शिवस्तुति में पार्वती को बाम भाग में स्थान दिया गया है। पर यज्ञादि करते समय पत्नी दक्षिण भाग में बैठे क्योंकि विवाह संस्कार में दक्षिण स्कन्ध का कन्या द्वारा स्पर्श एवं उक्त पाँच मन्त्रों द्वारा दी गई आहुतियाँ ही इस रहस्य की ओर संकेत कर रहे हैं तथा विवाह संस्कार की समाप्ति तक कन्या दक्षिण भाग में ही बैठती है—जैसा कि अजमेर मुद्रित 'संस्कार विधि' संवत् १९९१ पृष्ठ १४४ पर पुरोहित स्थापना से पूर्व **"वधू के वाम भाग में वर बैठे"** तथा लाजाहोम विधि में 'यहाँ वधू दक्षिण ओर रहकर अपनी हस्तांजलि को वर की हस्तांजलि पर रक्खे।" (पृ० १५७) लिखा है, इसी प्रकार चार परिक्रमाओं में पृ० १५९ पर, विदा के समय पृ० १६९ पर, पतिगृह पहुँचने पर पृ० १७१ पर वधू को दक्षिण बैठाया है। उसका कारण जहाँ सम्मान हैं वहाँ संस्कार का समाप्त न होना भी है। पर गर्भाधान में पृ० ३३ पर वाम भाग बैठी है। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन व जात कर्म में पत्नी के वाम भाग या दक्षिण भाग में बैठने की कोई चर्चा नहीं है। नामकरण में पत्नी को वाम भाग में बैठाने को लिखा है। निष्क्रमण संस्कार में भी पत्नी को पति के वाम भाग में बैठाने को लिखा है। (पृ० ६७) उक्त सम्पूर्ण उदाहरणों से यह सिद्ध है कि शुभ यज्ञों या संस्कारों में पत्नी दक्षिण भाग में बैठै यही सूत्रकारों का आशय है। ऋषि का लेख भी गृह्यसूत्रानुसारी ही है।

गोदान व कन्यादान का पौर्वापर्य

आश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुसार गोदान का कन्यादान से पूर्व विधान है। कहीं-कहीं कन्यादान के बाद भी गोदान का विधान है।

क्या कन्यादान अग्नि साक्षिक हो ?

वस्तुतः तो कन्यादान अग्निसाक्षिक ही होना चाहिए। क्योंकि राम और सुग्रीव की जो मैत्री हुई थी वह भी अग्नि को मध्य में साक्षी बनाकर ही हुई थी, विवाह भी अग्निसाक्षिक ही हुआ था। रामायण में आता है कि :—

"त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्यां महौजसः।"

कन्यादान का संकल्प कौन करे ?

कन्यादान का संकल्प केवल माता पिता या उस वर्ग के अन्य व्यक्ति ही करें। भाई आदि नहीं, हाँ भाई आदि कृत संकल्प के अनुमोदनार्थ यदि कुछ द्रव्यादि भेंट करना चाहें तो कर सकते हैं, जैसा होता भी है।

द्वाराचार या द्वारपूजा

प्रायः देखा जाता है कि द्वार पूजा या द्वाराचार करते समय आर्य-परिवारों में किन मंत्रों द्वारा वर का सत्कार किया जाय यह उथल-पुथल मच जाती है, इसी प्रकार "विवाह तिथि निश्चय पत्रिका" (लग्नपत्रिका) भेजते समय या आने पर उसके लेते समय मन्त्र विशेषों की जिज्ञासा होती है उनके समाधानार्थ यह "वैदिक विधि" उपस्थिति की जाती है।

द्वाराचार के मन्त्र विशेष

ईश्वर प्रार्थना के बाद इन मन्त्रों को पढ़ें।

ओ३म् यादम्पती समनसां सुनुत आच धावतः।
देवासो नित्यया शिरा: ।।१।।
प्रति प्राशव्यां इतः सम्यञ्चा बर्हि राशाते। न ता वाजेषु वायतः ।।२।।
न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः। श्रवो बृहद् विवासतः ।।३।।

वीति होत्रा कृतद्वसू दशस्यन्ता मृतायकम् ।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥४॥
(अथर्व २।३०।५)

एयमगन् पति कामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम् ॥५॥
(अथर्व १४।२।९, ६४)

इदं सु मे नरः श्रृणुत यदा शिवा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ॥६॥
स्योनास्ते अस्मै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतु मुह्यमानम् ॥७॥
पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्व मायुर्व्यश्नुतः । उभाहिरण्य पेशसा ॥८॥
(ऋ० ८।३१।५-९)

फिर शान्ति पाठ करके—तिल-ताम्बूल द्रव्य-मिष्ठान्न-अँगूठी आदि ग्रहण करें तथा दक्षिणा न्योछावर आदि लोकाचार करें ।

लग्न भेजने या लग्न पत्रिका लेने के मन्त्र

सर्वप्रथम आचमन अङ्ग स्पर्श कर सावधान हो ईश्वर प्रार्थना करें फिर—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभि शिक्वभीरेव दस्मे दीदायानिध्मो घृत निर्णिगप्सु ॥१॥
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारी देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ॥
कृता इवोप हि प्रसस्रे अप्सु स पीयूषे धयति पूर्व सूनाम् ॥२॥
अश्वस्यात्र जनि मास्य च स्वर्द्रु हो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्ना नृतानि ॥३॥
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषी मिषिराम ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आच घोषात्पुरु सहस्रा परिं वर्त्तयाते ॥४॥
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हावहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥५॥
शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शंनों भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्र कृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥
स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्ध श्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्व वेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्ट नेमिः, स्वस्ति नोवृहस्पतिर्दधातु ॥
पुनः शान्ति पाठ करे, एवं लग्नपत्रिका सुनावे ।

शिलान्यास पद्धतिः शालाकर्म (गृहप्रवेश) पद्धतिः

जिस दिन शिलान्यास करना हो उस दिन पूर्वाभिमुख होकर यज्ञ आदि करे तथा, पहले से बुलाए हुए नींव खोदने वालों से यज्ञ के बाद नींव खुदवावे, जब पहली बार फावड़ा जमीन पर खोदने को डाले तब गायत्री मन्त्र का पाठ करे । नींव खुदने के बाद मिस्त्री से चूना गारा या सीमैण्ट आदि के द्वारा एक शीशे के छोटे सन्दूक में चारों वेद या एक वेद बन्द कर स्वस्तिवाचन के पाठ के बाद उन्हें नींव के एक कोण में या मुख द्वार के दक्षिण ओर के दरवाजे की जड़ में स्थापित करे तथा :—

१. ओं शिखिने स्वाहा
२. ओं पर्जन्याय स्वाहा
३. ओं जयन्ताय स्वाहा
४. ओं इन्द्राय स्वाहा
५. ओं सूर्याय स्वाहा
६. ओं सत्याय स्वाहा
७. ओं भृशाय स्वाहा
८. ओं अन्तरिक्षाय स्वाहा
९. ओं अनिलाय स्वाहा
१०. ओं पूष्णे स्वाहा
११. ओं अर्यम्णें स्वाहा
१२. ओं जृम्भकाय स्वाहा
१३. ओं वितथाय स्वाहा
१४. ओं बृहत्क्षताय स्वाहा
१५. ओं यमाय स्वाहा
१६. ओं गन्धर्वाय स्वाहा
१७. ओं भृङ्गराजाय स्वाहा
१८. ओं मृगाय स्वाहा
१९. ओं पित्रे स्वाहा
२०. ओं दौवारिकाय स्वाहा
२१. ओं सुग्रीवाय स्वाहा
२२. ओं कुसुम दन्ताय स्वाहा
२३. ओं पिच्छिलाय स्वाहा
२४. ओं वरुणाय स्वाहा
२५. ओं असुराय स्वाहा
२६. ओं शोषाय स्वाहा
२७. ओं पापयक्ष्मणे स्वाहा
२८. ओं रोगाय स्वाहा

२९. ओं नागाय स्वाहा
३०. ओं मुख्याय स्वाहा
३१. ओं भल्लाटाय स्वाहा
३२. ओं सोमाय स्वाहा
३३. ओं भुजगाय स्वाहा
३४. ओं अदितये स्वाहा
३५. ओं दितये स्वाहा
३६. ओं अद्भ्यः स्वाहाः
३७. ओं आपवत्साय स्वाहा
३८. ओं अर्यम्णे स्वाहा
३९. ओं सवित्रे स्वाहा
४०. ओं सावित्राय स्वाहा
४१. ओं विवस्वते स्वाहा
४२. ओं इन्द्राय स्वाहा
४३. ओं जयाय स्वाहा
४४. ओं मित्राय स्वाहा
४५. ओं रुद्राय स्वाहा
४६. ओं रुद्र दासाय स्वाहा
४७. ओं पृथ्वी धराय स्वाहा
४८. ओं ब्रह्मणे स्वाहा
४९. ओं चरक्यै स्वाहा
५०. ओं विदार्य्यै स्वाहा
५१. ओं पूतनायै स्वाहा
५२. ओं पाप राक्षस्यै स्वाहा
५३. ओं स्कन्दाय स्वाहा
५४. ओं देवेभ्यः स्वाहा

तदनन्तर :—

ओं 'वास्तोष्पते' प्रति जानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नोभव द्विपदेशं चतुष्पदे स्वाहा॥
ओं मूर्धानं दिवो अरतिपृथिव्याः वैश्वानरमृत आजात मग्निम्। कविं सम्राजमतिथिं जनाना मासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा॥
ओं यदस्यकर्मणोऽत्यरीरिचम्०।

इत्यादि मन्त्रों से आहुति दे। फिर शान्ति पाठ करे। विशेष आहुति देनी हो तो रुद्राध्याय अर्थात् यजुर्वेद के १६ वें अध्याय से दे।

गृह प्रवेश पद्धति (शाला कर्म पद्धति)

यह पद्धति ऋषि दयानन्द ने स्वयं लिखी है। संस्कार विधि से ही जाननी चाहिए मुख्तया सामान्य यज्ञ कर विशेष आहुति दे तथा ओं "अच्युताय भौमाय स्वाहा" कहकर ध्वजारोपण करे, तथा "ओं इमामित्यादि" मन्त्रों से पूर्व द्वार के सामने "ओं अश्वावती" से दक्षिण द्वार के सामने "ओं आ त्वाकुमारः" से पश्चिम द्वार पर तथा "ओं अश्वावद्"

गोमद्० से उत्तर द्वार पर जल छिटकावे। फिर यथा विधि प्रवेश करे आहुति दे। फिर स्थाली पाक की आहुति दे, एवं दधि, घृत आदि को भिन्न-भिन्न द्वारों पर डालें ? शान्ति पाठ करें आशीर्वाद लें, तथा ब्राह्मण भोजन करावे। इस विधि के पूरे-पूरे मन्त्र संस्कार विधि में ही देखने चाहिए।

गृहारिष्ट शान्ति पद्धति

नारद स्मृति, आदि में यह लिखा है कि यदि बने बनाए मकान पर गृध्र निवास करने लगे या सर्पादि प्रविष्ट हो जायँ तो वह गृह परित्याज्य होता है—तथा अरिष्ट सूचक होता है—तथाहि—

गृध्रः कङ्कः कपोतश्च उलूकः श्येनएव च।
चिल्लश्चर्म विलश्चैव भासः पाण्डर एवच॥
गृहे यस्य पतन्त्येते तस्य गेहं विपद्यते।
पत्नी वा म्रियते तत्र पुत्रोवा भ्रातरस्तथा॥
धनं तस्य प्रणश्येच्च षड्भिर्मासैर्न संशयः॥

इन उपद्रवों को शान्ति के लिए ७ सात दिन तक गायत्री मन्त्र से सवा लाख आहुति दे तथा गूलर की समिधाएँ काम में ले। दही और गुड़ का ब्राह्मणों को भोजन में परिवेषण करे। यदि गूलर न मिले तो शमी की समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त करें तथा दधि-मधु-घृत का सातों दिन विशेष भोजन करे। फिर शान्ति पाठ, दक्षिणा व ऋत्विग् आदि को भोजन करावे, विशेष आहुति देनी हों तो रुद्राध्याय से दे।

'ऋत्विक् व पुरोहित का भेद तथा ऋत्विग् वरण'

पुरोहित यजमान का ऋत्विक् हो सकता है, पुरोहित पद से अधिक जिम्मेदारी आती है जब कि ऋत्विक् पद से कम। प्रत्येक ऋत्विक् पुरोहित नहीं हो सकता।

ऋत्विक् बनाने के लिए कुछ वरण सामग्री भी होती है जिसे ऋषि दयानन्द ने 'सामान्य प्रकरण' संस्कार विधि में लिखा है। वह लेख संस्कृत में ही है जिसकी हिन्दी स्वामी जी ने नहीं की है—वह इस प्रकार है :—

"ऋत्विग् वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि । अग्न्याधेय दक्षिणार्थं चतुर्विंशति पक्षे एको न पञ्चाशद् गावः । द्वादश पक्षे पञ्चविंशतिः, षट् पक्षे त्रयोदश, सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धनेवः । वरार्थं चतस्रो गावः ।" इति ।

इसका अर्थ यह है कि ऋत्विक् वरण के लिय १ एक कुण्डल एक अँगूठी दे । यजमान और उसकी पत्नी यज्ञ में अधोवस्त्र व उपवस्त्र (दुपट्टा) रेशमी पहिने, व ऋत्विजों को दक्षिणा में यज्ञ की समाप्ति पर यदि २४ ऋत्विक् हों तो प्रत्येक को दो-दो गौएँ दे । पुरोहित को एक अधिक दे । १२ बारह ऋत्विक् हों तो प्रत्येक को दो-दो गौएँ दें, पुरोहित को एक अधिक दे । यदि आदित्य ब्रह्मचारी-ऋष्यश्रृङ्ग जैसा—अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी यदि ऋत्विक् बनाया जाय तो उसे ८ आठ गौएँ दक्षिणा में दे, तथा वरण किए गये ऋत्विजों को यदि वे चार-चार होते एक-एक गौ प्रत्येक को दे । यह दक्षिणा का विधान यज्ञ के परिभाषा-नुसार है । इससे सिद्ध है ऋत्विजों का वरण केवल वचन से ही न करे किन्तु वरण के लिए वस्त्र सुवर्ण या रजत की अँगूठी या सिक्का भी खानापूरी करने के लिए चाहिए । इसलिए आर्य संस्कारों में इस ऋषि के लेख का भी पालन करना प्रत्येक यजमान का कर्त्तव्य है ।

अन्य विवाह विधियों से तुलना

सिक्ख विवाह विधि से तुलना

भारतवर्ष में ईसाई, मुसलमान, सिक्ख, पारसी सभी रहते हैं। इनकी विवाह विधियों का दिग्दर्शन कराना व इन विधियों पर भी दृष्टिपात करना उचित प्रतीत होता है। इनमें सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक ने अपने 'ग्रन्थसाहब' में वेद व ब्राह्मण को मान्यता प्रदान की है। अतः मूलतः हिन्दूधर्म व सिक्ख धर्म में कोई अन्तर नहीं है। यवनों से सम्पर्क और संघर्ष के कारण कुछ वेष और व्यवहार की संकीर्णता हट गई है— इनकी "विवाह विधि" में भी फेरे होते हैं जिन्हें 'लावाँ' कहते हैं। विवाह से पूर्व कुड़माई (सगाई) होती है तब—

हरि मुखि ढूँढ़ ढूँढ़े दिया,
हरि सपिण्ड लधा राम राजे।

इत्यादि वाक्य बोले जाते हैं, जिनका अर्थ है—बड़े परिश्रम से वर और कन्या को ढूँढ पाया है। यह भगवान की कृपा है। फिर 'सुन्दर नामा' के अनुसार 'विवाह का आरम्भ "ढुकाऊ बेला' इत्यादि क्रियाएँ होती हैं। सप्तपदी नहीं होती, विवाह का समय प्रातः ४ बजे से १० बजे तक का होता है। ग्रन्थ साहब का पाठ किया जाता है। ग्रन्थि बन्धन होता है, पहले फेरे के समय :—

हरि पहली लावाँ पर विरती,
कल दृढ़ाइयाँ बलिराम जीऊ।
वाणी ब्रह्मा वेद धरमु दृढ़हु,
पापन जाइया बलिराम जीऊँ॥ इत्यादि

वाक्य ग्रन्थ साहब से पढ़े जाते हैं। 'ढुकाइ बेला' (वरागमन के समय)

हम धरि साजन आए,
साँचे मेलि मिलाए॥

इत्यादि वाक्य बोलते हैं। लावाँ के बाद—

लावाँ के मगरों (साथ में) पढ़ने वाले शब्द

यार वे नित सुख सुहेवड़ी सासै पाई
वस लोड़ीदा पाइआ बजी बधाई ।। इत्यादि

आलोचना

इस पद्धति में ४ चार फेरे, सगाई आदि सारी विधियाँ हिन्दुओं जैसी हैं। केवल भगवान् का नाम स्मरण करके सत्य मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं। अन्त में अमृत छकना आदि व्यवहार हिन्दुओं की बढ़ार के समान हैं। वस्तुतः हिन्दू और सिक्ख दोनों एक है, फिर भी सिक्ख एक नया मत बन गया है। अन्त में जो उपदेश है वह बहुत उत्तम है—

दुनियाँदे लालचने साहब बिसारिया ।
जिसका तूं बन्दा तिसीका सवारिया ।।
न सूझ न बूझै बाहरि किया होई,
हरामी गरीबाँ के मारे बिगोई,
वसती उजाड़े फिर न बसावै,
कूके पुकारे तो दाद न पावे ।।
उस्तत (तारीफ) निन्दा नानक जी,
छोड़या सब कुछ त्यागी ।
हब्बे (सब) लाख कुड़ावे दिट्ठे ।
पल्ले तेरे लागी ।।

पारसी विवाह-विधि

पारस्य (ईरान) देश के निवासी पारसीक कहे जाते हैं। इनका धर्म-ग्रन्थ 'ज़िन्दावस्था' है, जिसका बनाने वाला महात्मा ज़रदुस्थ (जरदुष्ट्र) है। जिन्दावस्था उतना ही प्राचीन माना जाता है जितना वेद। इनके यहाँ बालक रेशमी कपड़े पहनता है तथा ब्रह्मचर्यकाल में रेशमी कपड़े उतार देता है। इनके यहाँ भी बाल-विवाह और बहुविवाह प्रथायें हैं।

विवाह से पहिले जन्मपत्री मिलायी जाती है, फिर परस्पर धनादि का आदान-प्रदान कर विवाह पक्का करते हैं। विवाह-विच्छेद (तलाक़) इनके यहाँ नहीं है किन्तु बहुविवाह है। विवाह के समय लड़का-लड़की कुर्सी पर आमने-सामने बैठते हैं और दस्तूर (पुरोहित) उन दोनों के बीच में एक कपड़ा तान देता है। वे दोनों उस कपड़े के नीचे से ले जाकर सीधा हाथ परस्पर पकड़ते हैं। फिर एक चादर उनके चारों ओर तान कर उसमें दो गाँठें बाँध दी जाती हैं। एक धागा उस चादर के चारों ओर सात बार लपेट कर लड़के और सड़की को उससे सात बार लपेटा जाता है फिर अग्नि प्रज्वलित कर सुगन्धित पदार्थ जलाए जाते हैं और दस्तूर अपने धर्मानुसार कुछ मन्त्रोच्चारण करता है तथा बीच का परदा हटा दिया जाता है तब पुरोहित दोनों के सामने खड़े होकर आशीर्वाद देता है। दोनों पक्षों के वकील एक दूसरे की स्वीकृति लिखित लेते हैं तदनन्तर फिर पुरोहित उपदेश देता है और तीस फ़रिश्तों और अहुर-मज़्दा से दुआ करता है कि वर और वधू सद्गुणशाली, नीरोग एवं त्रिदुःख, त्रिताप और पापों से बचे रहें, पुनः भोजनादि के बाद वर-वधू को लेकर चला जाता है।

समालोचना

इस विवाह-विधि के विषय में कुछ विशेष वक्तव्य नहीं, क्योंकि जितनी भी क्रियायें हैं वे वैदिक विवाह विधि से मिलती हैं। वर-वधू के बीच में कपड़े का तानना भी यमाहुति का प्रतीक है जैसा पौराणिक-विधि में होता है। ग्रन्थि-बन्धन और सप्तपदी गाँठ बाँधने के द्वारा और सात बार धागा लपटने के द्वारा प्रदर्शित की जा रही है। यह वैदिक विवाह का एक विकृत रूप है। आर्यसमाजियों के समान इनके यहाँ भी विधवा-विवाह होता है।

ईसाई विधि से तुलना

ईसाइयों में विवाह विशप Wishop या Presbyters (पञ्चायत) के द्वारा होता है। जब किसी लड़के या लड़की को पक्का कर दिया

जाता है तब तीन बार उसकी घोषणा गिरजे (चर्च) में की जाती है कि अमुक का लड़का व अमुक की लड़की की शादी होगी, किसी को कुछ कहना हो तो अब कह लो फिर न सुना जायगा। फिर लड़का गिरजे में पहले पहुँचता है, लड़की बाद में आती है तथा Prayer book से प्रार्थनाएँ व दुआएँ पढ़ी जातां हैं तथा पादरी कहता है कि तब तक तुम जुदा न होओ जब तक मौत तुम्हें जुदा न करे। Wedding cake जिसमें पानी नहीं होता सिर्फ घी व दूध में माँड़ कर बनाई जाती है। वह भी काटी जाती है। केक लड़के से कटाई जाती है लड़का चाहे तो उस समय केक काटने से पहले कुछ लड़की वालों से माँगता है साइकिल या मोटर इत्यादि। लड़की वाले यथासम्भव कुछ देते ही हैं। यही दहेज समझिए।

समालोचना

इस विधि में कोई विशेषता नहीं है। केवल यह उपदेश कि तुम एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते बड़े मार्के का है।

यवन-पद्धति से तुलना

इस पद्धति में वकील लड़की व लड़के से पृथक्-पृथक् पूछे कि तुम्हारा विवाह फलाँ के साथ या फलानी के साथ होना पक्का हुआ है अगर तुम्हें कुछ उज्र हो तो कहो वरना खामोशी रजामन्दी समझी जायगी। फिर घर पर लड़के के जाने पर बक़र के लड़के ज़ैद का निकाह ब एवज़ मोहरें मोज़ल (उधार) फलानी लड़की के साथ किया जाता है, क्या तुम राज़ी हो? तो लड़का व लड़की से "क़बिलता" शब्द बुलवाया जाता है। निकाह का अर्थ गिरह बन्धन है, लड़का लड़की दोनों पश्चिमाभिमुख बैठते हैं। क़लमा पढ़ाया जाता है। ईमाने मुफस्सल किताबो रसूलो मलायक (फरिश्तों) अच्छी और बुरी तकदीर पर क़यामत पर। फिर खुतबा पढ़ा जाता है। पहला खुतबा यह है:—
"अलहम्‌ इलिल्लाहिल महमूद विनियामते याबूद, वसल्लम व सलीमन कसीरन कसीरा।" इत्यादि।

मुसलमानों में तीन बार 'छोड़ा' शब्द कहने पर "तलाक़" हो जाता है, यदि तलाक़ देने वाला अपनी इस गलती को महसूस करे और उस स्त्री को फिर अपनी स्त्री बनाना चाहे तो उस स्त्री को पर पुरुष के साथ एक बार समागम करना ही होगा तथा १० दिन तक कम से कम पहले पति से अलग रहेगी तब उसे फिर अपनाया जा सकता है।

समालोचना

तलाक़ देने वालों को यह बड़ी अच्छी सजा है। एक प्रकार से तलाक़ न करने के लिये यह शिक्षा है। यदि तलाक़ दोगे तो तुम्हारे सामने तुम्हारी स्त्री परभुक्ता बनेगी, फिर भी तुम उच्छिष्ट भोगी बनो और तलाक़ दो तो तुम्हारी इच्छा। अतः तलाक़ कभी न करो, एक स्त्री व्रत बने रहो।

स्त्रियाँ सन्तानोत्पत्ति का या वंश करीरांकुर का जन्म देने वाली होती हुई भी "दारान् रक्षेद धनैरपि।" इस नीति के अनुसार उनका वश में रखना एवं अनुकूल बनाकर रखना ही उचित है, मुसलमानों जैसा खिलवाड़ उनसे करना ठीक नही है।

अन्तिम निवेदन

ये त्वात्मीय गुण प्रियाः परगुणे ये वाऽप्यसूयाभृतः,
तानेतान् गुणिनः कृताञ्जलि रहं याचे नमत्कंधरः।
मात्सर्या शुचि मानसं क्षणमथाभ्युक्ष्यानुकम्पा म्भसा,
प्रेक्ष्यः शीतलया दृशा सकृदपि ग्रन्थोऽयमामूलतः।

– इति शम् –

ENGLISH VERSION

Four Important Declarations of the Marriage Ceremony.

1. Declaration by the Bride and the Bridegroom.

ओं समञ्जन्तु विश्वेदेवा :—

Let all here present know that we two are this day accepting each other in full consciousness and willingness; and henceforth, our souls and our hearts shall be one, and we shall be as dear to each other as is the breath of life to us all.

2. Declaration by the Bride.

ओं प्रमेपतियान :—

Hence forth, the path of my husband shall be my path, and I shall devote my life and being to the service of my husband and her people.

Seven Vows by the Bride and the Bridegroom.

(i) ओं गृभ्णामिते-सौभगत्वायहस्तम् :—

In the auspicious presence of the sun, the elders, the learned and wise, and the prosperous ones, I willingly take thy hand and pray that thou mayest live with me happiness and marital bliss till a ripe old age.

(ii) भगस्ते-हस्तमग्रभीत् :—

I, endowed with wealth, virility (fertility), knowledge and fame, accept thee as my lawful mate; and henceforth, we shall live as man and wife in duty bound.

(iii) ममेया मस्तु-पोष्या :—

I shall support and sustain thee throughout life; the Almighty has joined us together in holy wedlock, and
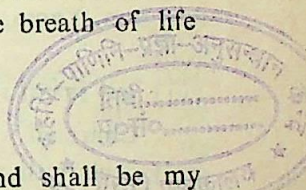
together shall we absolve ourselves of the debt we owe to ou ı forefathers, living a happy hundred years.

(iv) त्वष्टा वासो व्यदधात् :—

The Creator made us for each other, and together shall we follow the commands of the Vedas. We shall be unto each other even as the sunflower is to the sun.

(v) इन्द्राग्नी द्यावा-पृथिवी :—

This day, may we both be blessed with the seeds of progeny by Indra, the chief of gods, Fire, Heaven, Earth, Air, Sun, Yama, and the Ashwinis (the twin physicians of gods).

(vi) अहं विष्यामि मयिरूपम् :—

Charmed with each other's 'Roopa' (looks), we solemnly declare that we shall keep no secrets, one from the other, and despise even the thought of concealing anything and thus we shall free ourselves from the noose of Death.

(vii) ओं अमोऽहमस्मि :—

We accept each other in love and with full will. We shall not be negligent in our duties to our parents, and by their blessings, our family may grow and prosper, and our offspring live a full and happy span of a hundred years.

Ascending the stone, Throwing the parched Rice, and going round the Fire four times.

ॐ आरोहे ममश्मानम् :—

O Bride ! Place your right foot on the stone and be as firm as the stone, so that you follow in the righteous path and none may lead you astray.

ॐ अर्यमणम्, ॐ इयं नारी०, ॐ इमांल्लाजान् आवहाम्यग्नौ—

With the help of my husband I offer to the fire the

grains of parched rice that my dear brother put into my hands, and by this I pray for the long life of my husband's family as well as mine. Praying for my marital fortune (सौभाग्य), I go round the altar with my husband four times, signifying the four stages of life (Ashramas) and the four fruits of the tree of life (Dharm, Artha, Kam and Moksha).

Seven steps (सप्तपदी)

ओं इषे एकपदीभव—इत्यादि :—

My first step is for the management of the granary, the second for the health of my family, the third for wealth and knowledge, the fourth for a life of marital bliss, the fifth for the welfare of the progeny, the sixth for the six ancestors on my side and on my husband's side, and the seventh step is for the peace and unity of the family where now I go.

Exhortation for the unity of hearts

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि :—

Thy heart be one with mine,
Thy thoughts conform to my own,
Thou mayest listen to my words with faith and attention,
For the Almighty has himself brought us together.

The Husband's invocation of the Elders' Blessings

ॐ सुमंगली रियं वधू :—

You revered ones ! See this bride and her auspicious vermilion mark where the hairs do part ; and as you leave for your homes, bless her with a long and happy life of marital felicity.

शुद्धि-विधिः

आजकल कभी-कभी ऐसी समस्या उपस्थित हो जाती है कि कन्या क्रिश्चियन है वर हिन्दू है या कन्या यवन जाति की है तो वर हिन्दू है दोनों ही बालिग हैं तथा शुद्धि करा के वैदिक विधि से विवाहित होना चाहते हैं, उस अवस्था में शुद्धि जिसकी करनी हो उसे तीन दिन तक उपवास तथा पञ्चगव्य पान करावे। तदनन्तर यज्ञोपवीत विधि द्वारा जनेऊ प्रदान करे, तथा नित्य यज्ञ की समाप्ति पर ३ बार या ११ बार गायत्री मन्त्र से तथा "**ॐ यदस्य कर्मणो इत्यरीरिचम्,** इत्यादि प्रायश्चित्ताहुति दे, तदनन्तर शाकल्य या मिष्ठान्न की आहुति आज्याहुति के मन्त्रों द्वारा या गायत्री मन्त्र द्वारा देकर पूर्णाहुति, व शान्ति पाठ करके शुद्धि विधि समाप्ति करे, अन्त में दक्षिणा, दान व मिष्ठान्न वितरण करे फिर उस ही दिन या अन्य दिन शुभ मुहूर्त में विवाह विधि करे।

वर या वधू को वैदिक-आशीर्वाद

[१]

ओ३म् इहेमाविन्द्र ! संनुद चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनो स्वस्तिकौ विश्वमायुर्व्यश्नुतम्॥

प्रभु ! नव्य दम्पति के लिये करिये यही सत्प्रेरणा,
चकवा चकी सम प्रेम बन्धन में बँधे उन्नतमना।
परिवार सुख सन्तान वैभव धान्य से भरपूर हो,
पा पूर्ण जीवन क्लेश कल्मष से ये दम्पति दूर हो॥१॥

[२]

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः।

ये भिः सखायो यन्तिनो वरेण्यम्॥

समर्यमा संभगो नो निनीयात् ।
संजास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥

शुभ हों सभी गन्तव्य पथ कण्टक न कोई शेष हो ।
सुखदा सरलता का बिछौना बिछ रहा सविशेष हो ।
ऋजु मार्ग से चल वर-वधू साधें गृहस्थी धर्म को,
दीर्घायु हों ! हे देव ! समझें धर्म के प्रिय मर्म को ॥२॥

[३]

स्योनाद्योने राधि वुध्यमानौ, हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृही तराथो, जीवा वुषसोविभातीः ॥
हे वधू ! हे वर ! सुनो, यह ईश का उन्मेष है,
त्रैलोक्य के कल्याणकारी वेद का सन्देश है ।
भोगो गृहस्थाश्रम सदा आनन्द से पुत्रों सहित,
करना सभी व्यवहार मिल जुल ज्ञान-गरिमा से महित ॥३॥

[४]

ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः,
स्वस्ति नः पूषा विश्व वेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

हे ! हरे ! अक्षर अमर हो, आप ज्ञानागार हो,
वृद्धश्रवा अनुपम महस्वी सर्व सुषमाधार हो ।
स्वस्तिदायक ! हे प्रभो ! करुणा युगल पर कीजिए,
हो सौख्यमय जीवन, यही वर, वर-वधू को दीजिए ॥४॥

[५]

ओ३म् सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये,
श्वशुराय शम्भूः स्योना श्वश्र्वै प्रगृहान् विशेमान् ।

मंगल पूर्ण भाव से नन्दिनि ! घर में आदर पाओगी,
सेवा-मेवा को तुम चखकर सब ही को अपनाओगी।
श्वसुर महोदय को तुम देना पूज्य पिता जी सा सम्मान,
तथा सास को मात समझना, यूँ पावोगी सौख्य महान् ॥५॥

[६]

ओ३म् सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

पत्नी पति-गृह की पटरानी, है सब कुछ उसके स्वाधीन,
दासी या कि सेविका उसको, बतलाने वाले मतिहीन।
सास, ससुर का सम्राज्ञी सम, करना सदा उचित सत्कार,
ननदों और देवरों से भी रखना प्रेम पूर्ण व्यवहार ॥६॥

महर्षि कण्व का भी इस प्रसंग में वेदानुसारी यही सन्देश है कि :—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रिय सखी वृत्ति सपत्नी जने ।
भर्तुर्विप्रकृताऽपिरोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ॥
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी ।
यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥

करना सेवा पूज्य जनों की, तजना सदा सपत्नी भाव,
भर्ता कभी यदि कटु भी बोलें, लाना नहीं तदपि दुर्भाव।
नौकर चाकर आदि सभी से, रखना प्रेम, छोड़कर गर्व,
इन बातों से "गृहिणी" बनोगी, होगा नहीं मानगिरि खर्व ॥६॥

[७]

ओ३म् अभिवर्धतां पयसाऽभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्र वर्चसेमौस्तामनु पक्षितौ ॥

"दूधोन्हायो" धेनु वृन्द की सेवा का वरदान लहो,
अतिथि यज्ञ से देव यज्ञ से शुभ कर्मों का मार्ग गहो।

ज्ञान बढ़े धन धान्य बढ़े, पतिव्रता तुम कहलाओ,
दुख में हँसना सीखो, देवी ! जीवन पावन कर जाओ ॥७॥

[८]

ओ३म् सुमंगलीरियं बधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं वि परेतन ॥

सभ्य ! सुविज्ञ महोदय ! मंगलमयी वधू की ओर निहारो,
हो "सौभाग्यवती" यह आशिष, दिये विना न स्वगेह पधारो।
रहे दया की दृष्टि सर्वदा, रखना हम पर प्रीति घनेरी,
नित अनुकूल भाव दिखलाना, है यह विनय आप मेरी ॥८॥

[९]

स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु, चिरायरस्तु,
गो वाजिहस्ति धन धान्य समृद्धिरस्तु ।
ऐश्वर्यमस्तु बलमस्तु रिपुक्षयोऽस्तु,
सौभाग्यवृद्धि सहिता हरिभक्तिरस्तु ॥

[१०]

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥
अन्नं च नो बहु भवेदतिर्थी श्चलभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मा स्म याचिष्म कंचन ॥
(मनु : ३, २५९–६०)
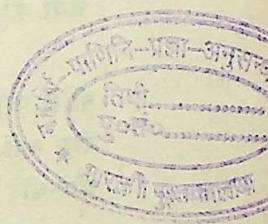
बिदाई गीत

(सखियों की ओर से)

बाबुल* का घर छोड़ के गोरी हो गई आज पराई रे। (टेक)
डोली देख जियारा डोले आँख नीर भर लाई रे।
न्यारी सारी जग की रीतें कितनी किसकी मीत रे,
झूंठे नाते झूंठे गोते, कितनी प्रीत निभाई रे।
बाबुल का०

जिन गलियों में बचपन बीता खोली आँख जवानी ने,
उन गलियों से किया किनारा सखियों की पटरानी ने।
भैया का मन भर-भर आया, छोड़ चली माँजाई रे।
बाबुल का०

पी के प्यार में खोकर गोरी ! हमको भूल न जाना,
रोज नहीं तो कभी-कभी दो अक्षर लिख भिजवाना,
धीरे-धीरे मधुर स्वरों में यही कहे शहनाई रे।।
बाबुल का०

।। इति शिवम् ।।

---

* बाबुल = पिता।

हमारा प्रकाशन

डी० ए० वी०

वे

वैदिक अनुस

द्वार

प्रकाशित

(१) ऋषि सन्देश डा० जीव

(२) सन्ध्या चिन्तन डा० मुन्शी

(३) राष्ट्रगीत संग्रह पं० विद्या

(४) पशुवलि और वेद पं० बिहारी

(५) विकास पद्धति वैदिक दृष्टि

डा० मुन्शीरा

(६) पुरुषसूक्त पं० विद्याध

(७) वेद संज्ञा-विमर्श पं० विद्याध

(८) वैदिक विवाह पद्धति

डा० हरिदत्त

(९) सनातन धर्मालोकालोचन

पं० विद्याधर

(१०) पुरुष सूक्त भाष्य डा० मुन्शीराम

अन्य आर्य सिद्धान्त सम्बन्धी पुस्तकें भी नि हो सकती हैं।

पता—मंत्री, आर्य समाज

मेस्टन रोड, कानपुर